(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का अध्यात्मिक मासिक-पत्र)

वार्षिक मू० ३॥) | सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई। इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई॥ | एक अंक का ।) सम्पादकीय विभाग शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार

सम्पादक—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, सहा० सम्पादक—प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०

वर्ष ८] मथुरा, १ नवंबर सन् १९४७ ई० [अंक ११

निराशा, एक प्रकार की नास्तिकता है।

निराशा एक प्रकार की-नास्तिकता है। जो व्यक्ति संध्या के डूबते हुए सूर्य को देखकर दुखी होता है और प्रातःकाल के सुनहरी अरुणोदय पर विश्वास नहीं करता, वह नास्तिक है। जब रात के बाद दिन आता है, मरण के बाद जीवन होता है, पतझड़ के बाद बसन्त आता है, ग्रीष्म के बाद वर्षा आती है। सुख के बाद दुख आता है, तो क्या कारण है कि हम अपनी कठिनाइयों को स्थायी समझें? जो माता के क्रोध को स्थायी समझता है और उसके प्रेम पर विश्वास नहीं करता, वह नास्तिक है और उसे अपनी नास्तिकता का दण्ड रोग, शोक, विपत्ति, जलन, असफलता और अल्पायु के रूप में भोगना पड़ता है। लोग समझते हैं, कि कष्टों के कारण निराशा आती है, परन्तु यह भ्रम है। वास्तव में निराशा के कारण कष्ट आते हैं। जब विश्व में चारों ओर प्रसन्नता, आनन्द प्रफुल्लता, आनन्द और उत्साह का समुद्र लहलहा रहा है, तो मनुष्य क्यों अपना शिर धुने और पछताये? मधु-मक्खी के छत्ते में से लोग शहद निकल ले जाते हैं, फिर भी वह निराश नहीं होती। दूसरे ही क्षण वह पुनः शहद इकट्ठा करने का कार्य आरम्भ कर देती हैं। क्या हम इन मक्खियों से कुछ नहीं सीख सकते? धन चला गया प्रियजन मर गये, रोगी हो गये, भारी काम सामने आ पड़ा, अभाव बढ़ गये, तो हम रोयें क्यों? इन कठिनायों का उपचार करने में क्यों न लग जावें।

यह कन्ट्रोल हटने चाहिए।

(पं० रामगोपाल देवलिया, मथुरा)

लड़ाई के जमाने में सरकार को लड़ाई के लिए विविधि वस्तुओं की एक बड़ी मात्रा में आवश्यकता होती थी। उत्पादन के साधन लड़ाई के कार्यों में लगे हुए थे, इसलिए वस्तुओं की कमी पड़ जाती थी। कमी की वजह से होने वाले कष्टों से जनता को बचाने के उद्देश्य से विविधि वस्तुओं पर कन्ट्रोल लगाया गया था।

लड़ाई के जमाने में कन्ट्रोल का कुछ अर्थ होसकता था, पर अब भी जब कि लड़ाई को समाप्त हुए दो वर्ष होगये—कन्ट्रोलों का चालू रहना समझ में नहीं आता। कहा जाता है कि वस्तुओं की कमी है, इस लिए यह जारी रखा गया है। इस कमी को पूरा करने के लिए उत्पादन बढ़ाना एवं बाहर से वस्तुएं मगानी चाहिए। कीमतों का कन्ट्रोल और अधिकार प्रदत्त दुकानदारों से ही वस्तुओं की प्राप्ति, यह दो तरीके ऐसे हैं जिससे जनता की कठिनाइयां बढ़ती हैं और चोर बाजारी तथा रिश्वत खोरी को फलने फूलने का अच्छा मौका मिलता है। जिस वस्तु पर कन्ट्रोल होता है वह बाजार में से गायब हो जाती है और मनमाने दाम पर बिकती है।

अच्छा तरीका यह है कि वस्तुओं को स्वतंत्रता पूर्वक बिकने दिया जाय। व्यापारियों की आपसी प्रतिस्पर्धा के द्वारा न तो वस्तुएं बाजार से गायब होने पावेंगी और न मूल्य अत्यधिक मंहगा होने पावेगा। जनता को जरा २ सी चीज के लिए समय की बर्बादी करने और परेशानी न उठाने की आवश्यकता न पड़ेगी। आज तो परमिट प्रथा ने व्यापारिक प्रतिस्पर्धा को मिटा कर चंद लोगों के हाथ में अधिकार देदिये हैं, इसीसे गड़बड़ी फैलती है।

यदि यह भय हो कि कन्ट्रोल उठने से पूंजीपति वस्तुओं को जमा करके दबा लेंगे और अकाल पैदा कर देंगे तो उसका उपाय यह हो सकता है कि जीवनोपयोगी वस्तुओं का सट्टा करना और नियत मात्रा से अधिक जमा करना कठोर कानून बनाकर रोक दिया जाय। फिर भी जो कानून तोड़ें उन्हें पकड़वाने वालों को भारी इनाम दिये जांय। इनाम के लोभ से जनता ही उन्हें पकड़वादेगी।

आज के वितरण के तरीके भी ठीक नहीं, जो गेहूं और चीनी खाने के आदी नहीं हैं, उन्हें जबरदस्ती वह चीजें दीजाती हैं, फलस्वरूप एक ओर अनावश्यक वस्तु थोपी जाती हैं और दूसरी ओर कमी पड़ने से चोर बाजारी होती है। आवश्यकतानुसार इच्छित वस्तु खरीदने की सुविधा हो तो यह अव्यवस्था न हो।

कन्ट्रोल के कारण प्रायः हर व्यक्ति को चोरी करनी पड़ती है। पाँच छटांक या छै छटांक अन्न में किसी का गुजारा नहीं होसकता। कहीं से न कहीं से लेना ही पड़ता है। कपड़ा पौन गज फी आदमी मिलता है, वह भी हर कोई खरीदता है। न तो कोई नंगा रहता है न भूखा। सब अपनी जरूरतों के लिए ब्लैक करते हैं। यही बात अन्य वस्तुओं के बारे में है।

ऐसी परिस्थितियों में जनसाधारण के चरित्र एवं नैतिकता का भारी पतन होरहा है। यह पतन उसे मनुष्यता के निम्नस्तर की ओर अग्रसर कर रहा है। अधिकारी, व्यापारी और ग्राहक तीनों ही चोरी के आदी होते जाते हैं। इस व्यापक अनैतिकता को पकड़ना और रोकना भी कठिन है। महात्मागान्धी ने इस बढ़ती हुई अनैतिकता को ध्यान में रखकर कन्ट्रोलों को उठा देने की सलाह दी है। सरकार को चाहिए कि प्रजा के चरित्र में चोरी की आदत शामिल होजाने के खतरे को ध्यान में रखकर उचित कदम उठावे और इन कन्ट्रोलों का अविलंब समाप्त करदे।

मथुरा १ नवम्बर सन् १९४७

बदला किससे लें ?

आततायियों ने जिस वर्बरता, क्रूरता और नृशंसता के साथ हत्याकाण्ड मचाये हैं उनकी मिसाल मानव जाति के इतिहास में मिलना कठिन है। इस पैशाचिकता को देख कर कंस, रावण और साक्षात शैतान को भी लज्जित होना पड़ा है। निर्दोष, मासूम, असहाय, शरणागत, रक्षा के लिए त्राहि त्राहि पुकारते हुए, भय से कांपते हुए, दया के लिए झोली पसारे हुए बाल वृद्धों पर, माता पुत्रियां पर, जिस निर्दयता और क्रूरता के साथ खंजर चलाये गये हैं, उस वर्बरता को देखकर यही कहना पड़ता है, इन धर्मान्ध लोगों तक धर्म की गन्ध भी नहीं पहुंची है, धर्म ने इनकी आत्मा का स्पर्श तक नहीं किया है। पुस्तकों में नर भक्षी राक्षसों की कथाऐं पढ़ी जाती थीं उन्हें किसीने देखा न था, पर आज वह असुरत्व बाढ़ की तरह उबल पड़ा है और उसने जो दानवी कृत्य उपस्थित किये हैं उसकी भयंकरता को देखकर रोंगटे खड़े होजाते हैं।

आज हर व्यक्ति के मस्तिष्क में इस वर्बरता के प्रति विक्षोभ की आग जल रही है, हर व्यक्ति इस शैतानी से सन्न रह गया है। हर व्यक्ति सोचता है कि मनुष्यता को, इंसानियत को, निगलने के लिए मुंह फाड़ कर दौड़ी आरही इस पैशाचिकता का कैसे अन्त किया जाय? क्रिया की प्रतिक्रिया होती है—आत्मरक्षा के भाव, इस वर्बरता के प्रति रोष, क्रोध और प्रतिशोध को लिए हुए जन साधारण के हृदयों में उबल रहे हैं। हम देखते हैं कि मनुष्यों के मस्तिष्क में आज यह एक ही प्रश्न प्रधान रूप से घूम रहा है, गूंज रहा है।

जिनके माता पिताओं के दुध मुंहे सुकुमार बालक उनके हाथों से छीनकर उनकी आँखों के आगे कत्ल किए गए हैं—जिन्होंने अपने भाई, बहिन, पत्नी, पति, सगे संबंधियों को गमाया है, अपनी जन्म भर की कमाई को लुटते और मिटते देखा है, जो अपने सुनहरी जीवन व्यवस्था को गंवाकर दाने दाने के मुंहताज बन रहे हैं उनके हृदयों में जो हाहाकार मच रहा है उसकी विषमता का अन्दाज लगाना कठिन है। जिन लोगों ने प्राण गंवाते समय दुसह पीड़ा को भुगता है उसकी तो कल्पना करना भी मस्तिष्क की शक्ति से बाहर है। यह प्रत्यक्ष अनुभूतियां आज मानव मनों में भैरवी हुंकार के साथ नृत्य कर रही हैं।

जनता के मनों में जो उद्वेग है उसे अस्वाभाविक नहीं कहा जासकता। ऐसी परिस्थितियों में भी जिसे उद्वेग न आवे उसे या तो पाषाण कहा जासकता है या परमहंस योगी। मनुष्य प्राणी की मानसिक रचना उसी आधार पर हुई है कि उसे शैतानियत के विरुद्ध क्रोध आता है। यह क्रोध इसलिए आता है कि उस उत्तेजना के द्वारा खतरनाक तत्वों से वह लड़ पड़े। इस स्वाभाविक प्रक्रिया के अनुसार आए दिन संघर्षों की सृष्टि होती रहती है। पक्के मकान और कुए तक ध्वनि की प्रतिध्वनि उपस्थित करते हैं गाली का जवाब गाली से देते हैं, पानी में ईंट फेंकने पर पानी उछलता है फिर यह संभव नहीं कि जिनके हृदय में आघात लगे हैं वे प्रत्युत्तर की बात न सोचें।

" क्षमा करो और भूल जाओ " की शिक्षा बड़ी उत्तम है पर वह उस अवसर पर दी जाती है जब आक्रमणकारी शक्तियां घुटने टेक देती हैं, झुके हुए के प्रति कटुता रखने की अपेक्षा उसे क्षमा कर देना ही बड़प्पन है। 'शान्त रहो और सहन करो' का उपदेश में या तो प्रतिकार की असमर्थता होती है या युद्ध नीति के अनुसार समय की प्रतीक्षा की जाती है। तपस्वी, ब्रह्मपरायण, वीतराग महात्मा भी अपनी साधना के लिए कठोर तप करते हुए तितीक्षा भावना से 'शान्त रहो और सहन करो' का आदर्श अपनाते हैं। जन साधारण के लिए यह कठिन है कि वह उत्तेजनात्मक वातावरण में इन आदर्शों का अक्षरशः पालन करे। हम भी ऐसी आशा किसी न नहीं करते और न ऐसे उपदेश करते हैं।

अनीति को देख कर क्रोध आना स्वाभाविक है। पर इस क्रोध में एक अस्वाभाविक दोष छिपा रहता है वह यह कि क्रोधी अन्धा होजाता है, उसकी विवेक बुद्धि, अन्तर्दृष्टि कुंठित होजाती है तदनुसार वह यह निर्णय नहीं कर सकता कि अपने शत्रु पर कहां और किस प्रकार प्रहार करूं। असली शत्रु की पहचानना भी उसके लिए कठिन होजाता है, ऐसी दशा में उसके प्रहार प्रायः गलत स्थान पर होते हैं और उस गलत प्रहार का परिणाम भी गलत ही होता है। इस प्रकार क्रोधान्ध को दुहरा घाटा रहता है एक तो पहले ही अनीति के कारण हानि हो चुकी थी, दूसरे गलत प्रतिशोध से वह प्रहार अपने ही ऊपर पड़ता है और दूनी हानि का कुफल भोगना होता है। इस खतरे से अनभिज्ञ होने के कारण प्रायः ऐसे कदम उठ जाते हैं जिनसे अनीति के उन्मूलन का लाभ तो दूर उलटी एक नई विपत्ति शिर पर आपड़ती है। जिससे क्रोधान्ध व्यक्ति अपनी शक्तियों सहित नष्ट हो जाता है। इसी खतरे को ध्यान में रख कर अध्यात्म के आचार्यों ने क्रोध की निन्दा की है पर विवेक पूर्वक अन्याय के प्रतिकार को धर्मयुद्ध कहकर प्रोत्साहित किया है।

हमें यह देखना है कि आज के बर्बर हत्याकाण्डों का उत्तर दायी असली शत्रु कौन है और उससे पूरा पूरा प्रतिशोध लेने के लिए किन हथियारों किन साधनों का प्रयोग करना चाहिए। हम वर्तमान दंगों को हिन्दू-मुसलिम संघर्ष नहीं मानते। क्योंकि हिन्दू धर्म या मुसलिम धर्म का एक भी सच्चा अनुयायी इन पैशाचिकता भरे कृत्यों को नहीं कर सकता। हमने कुरान को दसियों बार बड़े ध्यान पूर्वक पढ़ा है, वेदों का बीस साल से निरन्तर स्वाध्याय करते हैं एवं सिखों के ग्रन्थ साहब से भी हम अपरिचित नहीं हैं। इनमें से किसीमें भी ऐसी शिक्षाएं नहीं हैं। वरन् इसके प्रतिकूल दया, प्रेम, उदारता, रक्षा, सेवा, सहायता, क्षमा, आदि के उपदेश भरे पड़े हैं। जिन्होंने यह कृत्य किये हैं उनको किसी धर्म का अनुयायी नहीं कहा जा सकता। फिर उनकी करतूतों को हिन्दू मुसलिम संघर्ष किस प्रकार कहा जा सकता है ?

हम राजनैतिक घटना चक्र में जाने की जरूरत नहीं समझते और न पिछले दिनों जो लीग और कांग्रेस के नेताओं में जो तू तू मैं मैं हुई है उसका कौन अधिक दोषी है इस पर प्रकाश डालना चाहते हैं। वर्तमान हत्याकाण्डों में किस जाति ने किस जाति के लोगों को अधिक संख्या में एवं अधिक निर्दयता से मारा इसका विस्तार करने की भी कुछ आवश्यकता नहीं समझते। हमारी दृष्टि में निश्चित रूप से यह असुरत्व का—मनुष्यता के ऊपर आक्रमण है। इस असुरत्व ने, पैशाचिकता ने, दोनों ही जाति के लोगों को आच्छादित किया है, यह प्रश्न महत्व का नहीं कि कौन उसका अधिक शिकार हुआ कौन कम। घृणा, द्वेष, अज्ञान, अनीति क्रूरता और पशुता के तूफान में लोगों की आंखें मिच जाती हैं और वे न करने योग्य स्थान पर प्रहार करते हैं। जिसके बच्चे का कत्ल जिसने किया है वह उसको मार डाले तो यह समझ में आ सकता है पर जिसने कत्ल नहीं किया है उसके

बच्चे पर हाथ उठाना कौन सा न्याय है? यदि उसीने कत्ल किया भी हो तो भी उसका बच्चा तो सर्वथा निर्दोष है। निर्दोषों पर हमला करना न तो बदला है और न अनीति को रोकने का मार्ग। यह तो वैसा ही है जैसे कोई शराब पीकर उत्पात मचारहा हो तो उसका बदला लेने के लिए खुद भी शराब पीकर वैसे ही कृत्य करने लेंगे। इससे तो जिस अनीति के विरुद्ध हमारे मन में घृणा थी उसी को स्वयं भी अपना लेने से हम स्वयंको भी घृणास्पद बनालेंगे।

मनुष्य मिट्टी का पुतला है,उसके ऊपर विचार तत्वों का प्रभुत्व रहता है। जिस प्रकार के विचार जिस पर छाये रहते हैं वह उसी साँचे में ढल जाता है। निखिल आकाश में सत् और असत् की दो धारायें बहती हैं। जब असत् की, पाप की, शैतानी की धारा जोर पकड़ जाती है तो उससे अनेकों मनुष्यों के मस्तिष्क विकृत होजाते हैं। आज वही विकृति ताण्डव नृत्य कर रही है। हमारी असली शत्रु यही ताड़का है। इसी पूतना ने हमारे बालकों को खाया है। इसी से हमें बदला चुकाना है, इसी दुंहरा राक्षसी को होली में जलाना है।

जहां घृणा, अहंकार, असमानता,फूट, स्वार्थ, अज्ञान एवं निर्बलता होती है वहां असुरता को अपनी घात लगाने का अवसर मिलता है। इतनी विशाल जाति पर बाहर की कोई शक्ति हानि नहीं पहुंचा सकती। उसको खतरा तो आन्तरिक विकृतियों से है। हमने अपनों को पराया बनाया, उन्हें बहिष्कृत किया, अपमानित किया उस विकृति ने दूसरों के मनमें घृणा उपजी। इस घृणा ने शत्रुता का रूप धारण करके हमें दो भागों में बांट दिया। हमारी फूट, स्वार्थपरता और असावधानी ने हमें अनुचित रीति से दबाया। यह आन्तरिक निर्बलता जब तक रहेगी तब तक हमें उन आघातों से छुटकारा न मिलेगा जो एक हजार वर्ष से बराबर लग रहे हैं।

हम जानते हैं कि हर जाति का हर व्यक्ति उद्विग्न है और शत्रु से बदला लेने की सोच है। इस विषम घड़ी में हम जरा सा चूके सर्वनाश की ओर दौड़ पड़ेंगे। मनुष्यों को म से प्रयोजन सिद्ध न होगा। सन्निपात रोग ग्रसित रोगी को या भूतावेश से उन्मत्त व्य को मार डालने की जरूरत नहीं, जरूरत सन्निपात और भूत को मार भगाने की। यही करना चाहिए। हमारे आत्मीयों की, म के प्राणों की, श्रम उपार्जित जीवन उपकरणों सुख शान्ति की, सद्भावों की, निर्मम हत्य हुई हैं। इन हत्याओं का हम बदला लेंगे,अवि ग्रस्त पागलों से नहीं सन्निपात ग्रस्त धर्मा से नहीं, उनके निर्दोष बालबच्चों से भी नहीं, हत्यारी असुरता से बदलालेंगे जिसने हमें ब बाट कर दिया, जिसने निर्दोषों के रक्त से करके इस देवभूमि को कलंकित कर दि इस सूर्पणखा की नाक हमारी संघ शक्ति जातीय स्वस्थता की छुरी से कटेगी। आइए, छुरी को तेज करें।

आइए, हम घायलों के, विपद् ग्रस्त पीड़ि को घावों पर अपनी अकूत सहानुभूति अपनी अधिकतम सहायता का मरहम लग उन्हें सान्त्वना दें। जन साधारण के मस्तिष्क भरे हुए असुरता के उन्माद से लड़ें। और सतोमयी प्रचंड शक्तियों का आविर्भाव जिनके आगे आज घमंड से विजयोल्लास अट्टहास करने वाली असुरता को नाक रग पड़े, आत्म समर्पण करना पड़े। आज का आ जोश हम अनुपयुक्त मार्ग में व्यय नहीं व वरन् उस मार्ग में लगावेंगे जिससे भविष्य इस प्रकार के अवसर आना ही असंभव होजा

असुरता का बढ़ना हर धर्म के लिए, जाति के लिए, हर प्रदेश के लिए खतरा है। खतरे से मनुष्यता के अस्तित्व के लिए भय उ होगया है। इस विषम घड़ी में मनुष्य मात्र कर्तव्य है कि बिना जाति धर्म का विचार शैतानी शक्तियों को निर्मूल करने उन्हें कुचल के लिए पूरी शक्ति के साथ प्रयत्न करें। —

जातीय एकता की शक्ति

संसार की विभिन्न जातियों के उत्थान पतन के इतिहास पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि किसी समाज के ऊंचा उठने और नीचा गिरने का कारण उसका आन्तरिक संगठन, ऐक्य, प्रेम और सहयोग है। जो जातियां जब भी विकसित हुई हैं एकता केवल पर हुई हैं। धन, बल, विद्या, बुद्धि, साधन आदि से भी एकता की शक्ति अधिक है। साधन सम्पन्न जातियां एकता के अभाव में नष्ट हुई हैं और स्वल्प साधन वालों ने अपने संगठन के बल पर बड़े बड़े पराक्रम किये हैं।

किसी समय हिन्दू जाति बहुत ऊंची स्थिति में थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक का पद उसे प्राप्त था। तब उसके आदर्श विश्व बन्धुत्व के, आत्मवत् सर्व भूतेषु थे। वसुधैव कुटम्बकम् के सिद्धान्त को अपना कर आपस में सभी एक दूसरे पर आत्मभाव रखते थे। एक की हानि सबकी हानि, और एक का लाभ सबका लाभ समझा जाता था। जाति, संस्कृति, धर्म, देश की रक्षा एवं उन्नति लिए सभी सामूहिक रूप से सदा प्रयत्न शील रहते थे। यह गुण ही हमारे उत्कर्ष का सबसे बड़ा कारण था।

जब से एकता में कमी आई तभी से अनेक प्रकार की निर्बलताऐं प्रवेश करने लगीं। व्यक्तिगत लाभ के आगे जब सामूहिक लाभ को छोटा गिना जाने लगा, स्वार्थ के आगे जब परमार्थ की अवहेलना हुई, खुदगर्जी को जब आदर्श और सिद्धान्तों से ऊपर समझा गया तो निश्चित था कि हमारा जातीय पतन होता।

लगभग एक हजार वर्ष पूर्व मुसलमानों ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण किये, आक्रमण कारियों की सख्या मुट्ठी भर थी। वे स्वल्प प्रयास में न केवल यहां की धन सम्पदा लूटते रहे, वरन् अपना शासन भी स्थापित करते गये। अपने शासन में उन्होंने अपनी धर्मान्धता के मद में जिस प्रकार कत्ले आम कराये उनकी साक्षी इतिहास के पन्ने पन्ने पर मिलती है। यह सब होता रहा। थोड़े बहुत दिनों तक नहीं एक हजार वर्ष के लम्बे काल तक यह सब होता रहे। शासक बदलते रहे पर नीति में अधिक हेर फेर नहीं हुआ।

इतिहास हमें बताता है कि इस एक हजार वर्ष में कभी भी भारत इतना निर्बल नहीं हुआ था कि उसे थोड़े से लोग, इस आसानी से, इतने दीर्घ काल तक, इतनी बुरी तरह पददलित करते रहते। जब जहां आक्रमण हुए तब वहां के लोगों को ही वह सब भुगतना पड़ा। देश में अनेक राजा भरे पड़े थे, प्रजा के पास भी पर्याप्त अस्त्र शस्त्र थे, स्वास्थ्य और वीरता की दृष्टि से भी वे किसी से पीछे न थे। पर कमी एक ही थी, "अपने मतलब से मतलब" की नीति गहराई तक घुस गई थी। एक राजा दूसरे प्रदेश को बचाने के लिए खुद क्यों कष्ट उठावे? एक प्रदेश की प्रजा दूसरे प्रदेश की प्रजा को बचाने क्यों जावे? यह व्यापक स्वार्थ वहां भी व्याप्त था जहां आक्रमण होते थे। लोग संगठित होकर विरोध करने का प्रयत्न करने की अपेक्षा अपना व्यक्तिगत लाभ करने के लिए भागने की या दुश्मन से मिल कर लाभ उठाने की बात सोचते थे। ऐसी विशृंखलित जाति को लूटलेना, पददलित कर देना किसी के लिए क्या मुश्किल होसकता है।

उस घोर अंधकार के युग में शिवाजी, राणाप्रताप, गुरुगोविन्दसिंह, बन्दा वैरागी, सरीखे नक्षत्र गिने चुने ही दीखते हैं। ऐसे तो कईयों उदाहरण है कि अपने ऊपर आपड़ी तो बहादुरी से मर मिटे, पर ऐसे उदाहरण कम मिलेंगे जो दूसरों को बचाने के लिए उठखड़े हुए हों। इसके विपरीत ऐसे लोगों का बाहुल्य है जिन्होंने व्यक्तिगत लाभ के लिए आक्रमण कारियों को, विदेशियों को, भर पूर सहायता दी। मुसलमान और अंग्रेजों के राज्य संचालक हिन्दू ही थे। उन्हीं के सहायता से उनकी शासन व्यवस्था चल सकी।

बड़े बड़े राजाओं ने उनका साथ दिया, आधीनता स्वीकार की, व्यक्तिगत लाभ उनके लिए देश, धर्म सम्मान, स्वाधीनता सभी से बढ़ बढ़ कर था। वे करते भी क्या?—एकता के अभाव में नैतिक बल कायम भी तो नहीं रह सकता।

हमारी पराधीनता का इतिहास हमारी अशक्ति या आक्रमण कारियों की शक्ति का इतिहास नहीं है। बल्कि अनैक्य की, विसंघटन की एक करुण कहानी है। जब इस विसंगठन में कमी आई, एकता की शक्ति का थोड़ा सा संचार हुआ तो इतना प्रचंड राष्ट्र तेज जग पड़ा कि जिसके भय से आज विदेशियों को दुम दबा कर भागना पड़ रहा है। राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस को जनता की शक्तियों का संगठन करते हुए अभी तीस वर्ष भी नहीं हुए कि राष्ट्र की प्रसुप्त आत्मा जाग पड़ी—इस भगवती दुर्गा की हुंकार मात्र से दिशाएँ थर थर कांपने लगीं। पूरे एक लाख भी नहीं–केवल कुछ हजार सत्याग्रहियों ने, नंगे हाथों, जेल जाने मात्र का कार्यक्रम अपना कर–उन शासकों को भगा दिया जो प्रलयंकारी परमाणु शक्ति से सुसज्जित थे, जिनके साम्राज्य में कभी सूर्य अस्त नहीं होता। यह सत्याग्रहियों की नहीं, कांग्रेस की नहीं, एकता की शक्ति है। यह जितनी जितनी बढ़ती जावेगी उतना ही हम उत्कर्ष की ओर बढ़ेंगे।

जहांगीर की बेटी का डाक्टर सर टामस रो ने इलाज किया। लड़की अच्छी होगई। जहाँगीर ने डाक्टर से कहा–मुंह मांगा इनाम मंगालो। डाक्टर चाहता तो अपने लिए कोई बड़ी सी जागीर, ओहदा या लाख करोड़ की सम्पत्ति मांग सकता था और अपनी पीढ़ी दर पीढ़ी के लिए शाही वैभव प्राप्त कर सकता था। पर उसने ऐसा नहीं किया। उसने जहांगीर से मांगा कि "मेरे देश से आने वाले माल पर आपके राज्य में चुंगी न लीजाय" उसे मुंहमाँगी मुराद मिलगई। सर टामस रो को व्यक्तिगत दृष्टि से कुछ नहीं मिला, पर उसका देश, इंग्लैण्ड माला-माल होगया। जिस देश के नागरिकों में सर टामस रो जैसी देशभक्ति हो उसी देशको उसी जाति को उन्नति का गौरव प्राप्त होता है। इंग्रेजों के इसी गुण ने थोड़े से दिनों में ही उन्हें विशाल साम्राज्य का स्वामी बना दिया और इसी गुण को खो देने के कारण भारत को दीनता, दासता एवं बर्बरता की यातनाएं सहनी पड़ीं।

इस्लाम के जन्म को केवल मात्र तेरह सौ वर्ष हुए हैं। जातियों के जीवन की दृष्टि से यह समय अत्यंत ही स्वल्प है। इतने थोड़े समय में मुसलमानों की संख्या पचास करोड़ के लगभग होगई। संख्या की दृष्टि से दुनियां में सबसे अधिक ईसाई हैं, उससे कम मुसलमान हैं। इतने थोड़े समयमें दुनियाँ के कोने कोने में मुसलमान इतनी प्रचंड मात्रा में होगये, क्या आपने कभी विचार किया है कि इसका कारण क्या है? प्रचार की, धन की, शासन की शक्ति अथवा दार्शनिक उत्कृष्टता के कारण वे इतने नहीं बढ़े हैं, इस वृद्धि का असली रहस्य है—उनकी जातीय एकता। अपने सजातीयों के लिए वे सब कुछ कर सकते हैं। भारतवर्षके मुसलिम राष्ट्रीय नेताओं तकके सामने जब जाति भक्ति और देशभक्ति में से एक को चुनने का प्रश्न आया है तो समय समय पर अनेकों ने स्वजातीयों का ही पक्ष लेकर राष्ट्रीयता को तिलाञ्जलि दी है यह सब राजनीति के विद्यार्थियों से छिपा नहीं है! कसाईगीरी वेश्यावृत्ति जैसे घृणित पेशे करने वाले स्त्री पुरुष तक अपनी जातीय वृद्धि के लिए–तबलीग के लिए–अपनी कमाई में से एक भाग देते हैं और अन्य उचित अनुचित तरीकों से उसके लिए प्रयत्न करते हैं। सजातीयों का अनुचित पक्ष लेने में, उन्हें अनुचित एवं अनावश्यक सहायता देने में झिझक नहीं होती। मुस्लिम जाति की यही विशेषता उनकी इस वृद्धि का कारण हुई है। इस एकता के बल पर ही उन्होंने अपने दुराग्रह तक को पूरा कर लिया। धर्म के आधार पर देश का विभाजन जैसी अप्रजातांत्रिक, अवैज्ञानिक, अनोखी मांग को

मनवा कर छोड़ा।

हिन्दू जाति कई दृष्टियों से अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट है। उसका धार्मिक आदर्श इतना ऊंचा है, जिसकी तुलना में अन्य धर्मों का साहित्य नहीं ठहर सकता। उसकी प्रथाएं, परम्पराएं, अनुपम हैं। पतिवृत का ऐसा आदर्श अन्यत्र मिलना कठिन है। शारीरिक बल में विद्या में, बुद्धि में, वाणिज्य में, कला में, चातुर्य में, सब में पर्याप्त क्षमता शील हैं, पर सबसे बड़ा दुर्गुण एक ही है। वह है—जातीय अनैक्य, फूट, विसंगठन। इस एक ही कमी ने सारी योग्यताओं को चौपट कर रखा है। यह योग्यताएं सामूहिक कार्यों में लगें, सब लोग एक दूसरे के हमदर्दी रखें, भाई भाई के दुख सुख को अपना समझे, एक दूसरे को ऊंचा उठाने, सहायता देने और मुसीबत में बचाने के लिए तत्पर रहे तो कोई कारण नहीं कि हम प्राचीन गौरव को पुनः प्राप्त न कर सकें।

बहुत सो लिये, आइए अब उठें, और एक दूसरे की सहायता करते हुए अपने जातीय संगठन को मजबूत बनावें। अब हमारा सौभाग्य सूर्य पुनः उदय होरहा है, अपनी भूलों को हम समझ गये हैं, उन्हें पुनः न दुहरावेंगे। अनैक्य ने हमें बर्बाद किया था, एकता के बल पर अब हम ऊंचे उठने लगे हैं। आइए, इस संघ शक्ति को प्रचण्ड रूप से जागृत करें और अपने महान गौरव की प्राप्ति के लिए द्रुतगति से आगे बढ़ चलें।

स्वाभिमानी और पवित्र हृदयी पुरुष निर्धन होने पर भी श्रेष्ठ गिना जाता है। + +

दूसरों को प्रसन्न करने के लिये मीठी मीठी बातें बनाने वाले खुशामदी लोग बहुत हैं पर कल्याणकारी कड़वे वचन कहने और सुनने वाले मनुष्य कठिनता से मिलते हैं। + +

हे सौन्दर्य! तू अपने को प्रेम के अन्दर ढूंढ़। अपने दर्पण की मिथ्या प्रशंसा में नहीं। ——

संस्कृति एवं दर्शन का महत्व

लोक जीवन के दो प्रमुख स्तंभ हैं। (१) संस्कृति (२) राजनीति। इन दो के आधार पर मानव समूहों की—देशों और जातियों की जीवन दिशा का निर्माण होता है। जल और अग्नि की तरह इनका प्रवाह प्रचंड है। इन की धाराएं जिधर चल पड़ती हैं, उधर बड़े बड़े चमत्कार उपस्थित कर देती हैं। लोक जीवन में इन दोनों की अतुलित शक्ति है।

राज सत्ता के द्वारा प्रजा की सुरक्षा, साधन एवं समृद्धि का निर्माण होता है। बाहर के आक्रमणकारियों को परास्त करना, आन्तरिक शत्रुओं चोर, डाकुओं, अपराधियों को कुचलना, यातायात, उत्पादन, व्यापार आदि के साधन उपस्थित करना, स्वास्थ्य और शिक्षा को बढ़ाना, न्याय दिलाना, देश की समृद्धि बढ़ाना, व्यवस्था स्थापित रखना, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में संधि विग्रह एवं अपने हितों की रक्षा करना यह सब कार्य राजनीति से संबंध रखते हैं। जिस देश की राजनैतिक शक्ति जितनी ही उत्तम होगी इन सब दिशाओं में उस देश की प्रजा उसी अनुमान से साधन सम्पन्न बनेगी। राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन होते ही उपरोक्त क्षेत्रों में परिवर्तन होजाता है। इसलिए अपने देश की राजनैतिक स्थिति को ठीक रखने, उत्तम बनाने के लिए एवं सुधारने के लिए समय समय पर चुनाव, आन्दोलन, प्रचार एवं संगठन होते हैं। इन कार्यों में अनेकों व्यक्ति एवं संस्थाएं अपने अपने दृष्टिकोण के अनुसार दिलचस्पी लेते हैं, काम करते हैं।

संस्कृति के द्वारा लोक दर्शन का—लोगों के सोचने के ढंग का—निर्माण होता है। पशु को मनुष्य बनाने का, और मनुष्य को महात्मा परमात्मा, बनादेने का एक मात्र हेतु उसकी "सोचने की परिपाटी" है। इसी को दर्शन अथवा संस्कृति कहते हैं। जिस समुदाय का

सोचने का ढंग जैसा है, जो आदर्श है, जो विश्वास है, जो उत्कृष्ट अभिलाषा,महत्वाकांक्षा है एवं जो संतोष का केन्द्र बिन्दु है वही उसका दर्शन है इसीको उसकी संस्कृति कह सकते हैं।

वेष, भूषा, भाषा, भाव, खान पान, रीति, रिवाज, पाप, पुण्य, परलोक, ईश्वर, मजहब, श्रद्धा, पूजा, परम्परा, इतिहास, इच्छा, उत्सव, व्यसन, मनोरंजन, रुचि, अरुचि आदि बातें दर्शन एवं संस्कृति से संबंधित हैं। यदि सोचने का ढंग बदल जाय तो मनुष्य की उपरोक्त बातों में भी परिवर्तन होजाता है। हमारे देश में एक ही नस्ल के, एवं ही आकार प्रकार के, एक से ही स्वार्थों के करोड़ों लोग रहते हैं, पर उनके सोचने का ढंग भिन्न होने से उनमें बाह्य और आन्तरिक काफी असमानता पाई जाती है। हिन्दू के सोचने की जो प्रणाली है उसमें और मुसलमान के सोचने की प्रणाली में जितना अन्तर एवं विरोध है उतना ही अन्तर अथवा विरोध उनके बाहरी-सामाजिक-जीवन में दृष्टि गोचर होता है।

न केवल साम्प्रदायिक वरन् समान योग्यता के लोगों में भी जो असमानता दिखाई पड़ती है उसका कारण उनके "सोचने का ढंग" ही है। मनुष्य में जो दैवी विशेषता है वह उसकी विचार शक्ति ही है इस विचार शक्ति के आधार पर ही वह, नीचता एवं उच्चता प्राप्त करता है, धनी-दरिद्र, लोभी-उदार, पापी-पुन्यात्मा, कायर-वीर, शिक्षित-अशिक्षित, गुणवान्-दुर्गुणी बनता है। नये नये मार्ग खोजाता है, गुत्थियों को सुलझाता है तथा विचार क्षेत्र को और भी अधिक सुविस्तृत करता है। शरीर की दृष्टि से मनुष्य मनुष्य के बीच में बहुत थोड़ा अन्तर होता है—पर उनमें जो असाधारण अन्तर देखा जाता है उसका कारण उनकी विचार शक्ति का अन्तर ही है। यह विचार शक्ति चाहे जिधर यों ही ऊबड़ खाबड़ नहीं बहती, वरन् किसी निर्धारित पथ से चलती है। जैसे जल की धारा नदी नालों में होकर समुद्र तक पहुंचती है वैसे ही विचार शक्ति भी किसी प्रणाली में होकर आगे चलती है। इन प्रणालियों को 'वाद' 'सम्प्रदाय' 'आदर्श' 'सिद्धान्त' 'दर्शन' आदि नामों से पुकारते हैं। दर्शन की उच्चता, स्पष्टता, शुद्धता दृढ़ता एवं विस्तार के अनुसार मानव समुदायों की मनोभूमि का निर्माण होता है और मनोभूमि के आधार पर उनकी आकांक्षाएं तथा क्रियाएं बनती हैं।

राजनीति स्थूल तथ्य है उसके द्वारा, समृद्धि और सुरक्षा के भौतिक साधनों का निर्माण होता है। उसका हेर फेर एवं परिणाम तुरन्त दिखाई पड़ता है, उसकी प्रकृया घटना प्रधान होती है इसलिए हरकोई उसे देख सकता है,समझ सकता है, आकर्षित होसकता है और पक्ष विपक्ष में कार्य कर सकता है। पर संस्कृति की बात इससे भिन्न है। उसके द्वारा जन समुदाय की अन्तरंग भूमि का निर्माण होता है, उसका एक बहुत ही छोटा अंश प्रत्यक्ष रूप से देखा जासकता है। दर्शन सूक्ष्म है, वह मनुष्य के अत्यन्त गुह्य स्थान में रहता है, परिस्थितियों के कारण वह अनेक अवसरों पर दबा हुआ भी पड़ा रहता है ऐसी दशा में उसका देख सकना आसान नहीं है। इस सूक्ष्म शक्ति के द्वारा जो महान परिणाम उपस्थित होते हैं उन्हें ठीक तरह से समझ सकना भी सबके लिए सुलभ नहीं। इस लिए लोग जैसा राजनीति का महत्व समझते हैं वैसा संस्कृति का नहीं जानते। यही कारण है कि राजनीति में जितना उत्साह दिखाया जाता है उतना संस्कृति में नहीं दिखाया जाता। आज राजनीति सर्व प्रधान है पर संस्कृति एक कोने में उपेक्षित पड़ी हुई है।

लोग समझते हैं कि हम राजशक्ति से अपने देश को चाहे जैसा बना सकते हैं, कानून हाथ में आते ही मनमाने सुधार करा लिये जायेंगे, जिस रास्ते पर चाहेंगे उस पर चलने के लिए राजदंड द्वारा लोगों को विवश कर लेंगे। यह अति उत्साह है। ऐसा समझने वाले लोग यह नहीं जानते कि राजनीति की शक्ति कितनी सीमित है।

वह स्थूल मनुष्य के बहुत ही स्थूल अंश को प्रभावित करती है। सूक्ष्म मानव का सूक्ष्म अन्तःकरण तक स्थूल राजशक्ति की सत्ता का प्रवेश होना कठिन है। राज कानूनों में प्रायः सभी दुष्टताओं, पापों, अनैतिकताओं को वर्जित एवं दंडनीय घोषित किया गया है, पर सर्व विदित है कि उन कानूनों का कितना अधिक उल्लंघन किया जाता है। अपराधी लोग कानूनी चंगुल से बच निकलने के लिए अनेकों तरकीबें निकाल लेते हैं और राजाज्ञा के उद्देश्य को विफल करते रहते हैं। व्यभिचार, जुआ, चोरी, ठगी, झूठ अहिन्सा, अन्याय,अपमान यह सभी राज्य नियमों के विरुद्ध हैं पर जब कि लोगों के अन्तःकरण में उन नियमों के प्रति आन्तरिक,अटूट श्रद्धा नहीं है तो उल्लंघन इतना अधिक होता है कि हजारों अपराधियों में से कभी कोई एकाध पकड़ा जाता है, और पकड़े जाने वालों में से भी बहुत कमको सजा मिलती है और सजा पाने वालों में से कोई विरला ही भविष्य के लिए वैसा न करने की सुदृढ़ प्रतिज्ञा करता है। ऐसी दशा में—श्रद्धा के अभाव में राजकीय कानून उन बुराइयों को रोकने में सफल नहीं हो पाते, जिसके लिए उनका निर्माण हुआ था। कई बार प्रजा की प्रबल इच्छा के कारण उपयोगी कानूनों को भी शिथिल या बन्द करना पड़ता है। या यों कहिये कि जन भावना के सामने उन कानूनों का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। योरोप अमेरिका में पतिव्रत पत्नीव्रत, व्यभिचार, गर्भपात, मद्यपान आदि के कानूनों की इतनी अवहेलना हुई है कि उनका होना न होना एक सा बन गया है। भारत में रिश्वत चोरबाजार एवं कन्ट्रोल संबंधी राजाज्ञाओं की जो दुर्दशा होरही है उससे यह सहज ही जाना जासकता है कि केवल मात्र राजनीतिक शक्ति से जनता को किसी मार्ग पर पूरी तरह नहीं मोड़ा जासकता। धर्म, सम्प्रदाय तथा नागरिक अधिकारों की कितनी ही सीमाएँ तो ऐसी हैं जिसमें राजनीति का हस्तक्षेप ही वर्जित है। ऐसी दशा में यह सोचना कि राजनीतिक शक्ति के द्वारा जन समुदाय को जैसा चाहे वैसा बना लिया जायगा अत्युत्साह है।

चीन को राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त है, पर वह अब तक अपने को अफीम के पंजे से न छुड़ा सका। अमेरिका का कानून हवसियों पर होने वाले अमेरिकनों के अत्याचारों को रोकने में असमर्थ है। इसके विपरीत जर्मन और जापान को पराजय के पश्चात् मित्रराष्ट्रीय प्रतिशोध का पूरी तरह शिकार होना पड़ा, फिर भी वहां की प्रजा अपनी स्वतंत्राकांक्षा के कारण इतने थोड़े दिनों में अपनी खोई हुई स्वतंत्रता का एक बड़ा अंश प्राप्त कर चुकी है और शेष को भी शीघ्र ही प्राप्त करके रहेगी। राजनीति में भय और प्रलोभन की शक्ति है, इस शक्ति से लोगों को किसी दिशा में चलने के लिए एक हद तक दबाया जासकता है। मुसलमान बादशाहों की पूरी कोशिश यह रही कि उनकी प्रजा मुसलमान बन जाय, फिर भी सर्व विदित है कि इतने कठोर प्रयत्नों के बावजूद उन्हें सफलता बहुत कम अंशों में मिली। लोगों के हृदय में जमे हुए विश्वासों को बादशाहों के प्रयत्न बहुत छोटी सीमा तक ही विचलित कर सके।

संस्कृति की, दर्शन की,शक्ति अपार है। उससे मनुष्य का हृदय, अन्तःकरण, चित्त और मन बुद्धि का कोना कोना सराबोर होता है। यह रंग इतना पक्का होता है कि भय, प्रलोभन, तर्क, तथ्य आदि पैने औजारोंसे भी उसको हटाना कठिन होता है। साम्प्रदायिक कट्टरता को तथ्यों और तर्कों से अनुपयोगी सिद्ध किया जाचुका है किन्तु धुरन्धर विद्वानों तक में वह भाव भरे हुएहैं। यह लोग अपने मस्तिष्क की समस्त शक्तियों को एकत्रित करके उन सूर्य से स्पष्ट तथ्य और तर्कों की प्रतिद्वन्दता करते हैं। मन का भीतरी भाग जिस भली, बुरी प्रणाली के अनुसार संचालित होता है उस दिशा में मनुष्य का शरीर और मस्तिष्क क्रिया शील होता है। चोर, डाकू,

व्यभिचारी, व्यसनी, नशेबाज, जुआरी आदि दुर्गुण-ग्रस्त व्यक्ति बराबर अपमान, निन्दा, घृणा अविश्वास तथा दंड सहते रहते हैं फिर भी उनके मनमें जो बस गई है उसे छोड़ते नहीं। दूसरी ओर साधु, महात्मा, देशभक्त, लोक सेवक, परमार्थी, सेवाभावी, धर्मव्रती लोग नानाप्रकार के अभावों और कष्टों को सहते हुए भी अपनी प्रवृत्तियों को जारी रखते हैं। इससे प्रकट है कि मनुष्य बाहरी बातों से जितना प्रभावित होता है उससे कहीं अधिक दृढ़ता उसके आन्तरिक भावों के आधार पर होती है। कमजोर प्रकृति के लोग विपरीत परिस्थिति आने पर, अपने मूलभूत विचारों को दबा लेते हैं, फिर भी उनकी आन्तरिक इच्छा वही रहती है और अवसर आने पर राख से दबी हुई चिनगारी की तरह पुनः प्रस्फुटित हो जाती है।

मनुष्य सचमुच मिट्टी का पुतला है। उसके अन्तरंग क्षेत्र में जैसे विचार और विश्वास घुस बैठते हैं वह उसी ढांचे में ढल जाता है। इन विचार और विश्वासों में परिवर्तन होने से वह बदल जाता है। नारद जी के प्रयास से डाकू वाल्मीक महात्मा, ऋषि, महाकवि वाल्मीक बन गये। जेल खाने की यातानाएं डाकुओं को संत बनाने में समर्थ नहीं होरही हैं पर विचार परिवर्तन, हृदय परिवर्तन के द्वारा यह सब तुरन्त होसकता है। व्यक्तियों का, समुदायों का, जातियों का, राष्ट्रों का चरित्र, शौर्य, साहस, क्रिया कलाप, गौरव, पराक्रम, संगठन, धन, यश एवं प्रभाव उनके 'दर्शन' पर निर्भर रहता है, राजनीति पर नहीं। राजनीति दर्शन पर अवलम्बित रहती है, प्रजा के विचारों के प्रतिरोध में चलने वाली राजनीति को प्रायः असफल ही रहना पड़ता है। इसलिए अब इस युग में राजनैतिक नेता भी राज नीति के साथ साथ दर्शन बदलने का प्रयत्न करते हैं। अब अस्त्र शस्त्रों की भांति "प्रचार" के लिए भी सरकारें बड़ी बड़ी धन राशियां व्यय करती हैं। राजनीति को भी 'दर्शन' की प्रचण्ड शक्ति माननी पड़ती है और उसकी शरण में आना पड़ता है। फिर भी उसका प्रचार विफल रहता है क्योंकि साधारण बुद्धि रखने वाले भी 'वाराङ्गनैव नृपनीति अनेक रूपा' का रहस्य जानते हैं। राजनैतिज्ञों द्वारा किये हुए प्रचार में उन्हें सहज ही अविश्वस्तता दिखाई देने लगती है।

"दर्शन" वह महान तथ्य है जिसके आगे मनुष्य आत्म समर्पण करता है। उससे प्रभावित होता है, प्रेरणा ग्रहण करता है, प्रकाश पाता है, और मार्ग बनाता है। चिकनी मिट्टी को सांचे में ढाल कर उससे विभिन्न आकृतियों के खिलौने बनाये जाते हैं, इसी प्रकार दर्शनों के सांचे में मनुष्यों के विचार और कार्य ढलते हैं, संस्कृति की टकसाल में मानव अन्तःकरण की कच्ची धातु को ढाल कर उसे एक विशेष सिक्का बना दिया जाता है। यह महान तथ्य है, महान कार्य है, इसके ऊपर मानव जाति का वर्तमान और भविष्य निर्भर है। यह महान शक्ति अवसर वादी राजनीति के हाथ में नहीं रहती, वे इसे रख भी नहीं सकते, यह शक्ति तो महान आत्माओं के बीत राग सन्तों के, हाथ में रहती है।

आज हमारे देश और जाति में जो निर्बलताएं हैं, उन्हें दूर करने के लिए राजनीति प्रयत्न शील है। पर साथ ही दार्शनिक प्रयत्न भी होने चाहिए। अकेली राजनीति से क्षणिक एवं आंशिक सफलता मिल सकती है। प्रजा को जैसा बनाना है उसके अनुरूप उसके अन्तःकरण का निर्माण करना होगा। तभी राजनीति के प्रयत्न सफल होंगे। पुलिस और सेना चोरी, व्यभिचार को, अनैतिकता को नहीं रोक सकती। धर्म परायणता, कर्मफल का निश्चय एवं ईश्वर की सर्व व्यापकता का विश्वास ही उसका अन्त कर सकता है। टैक्स लगा कर अथवा बाध्य करके लोगों का धन और समय लोक हित के लिए नहीं लिया जासकता यह तो दान, त्याग, सेवा, परमार्थ, परोपकार, और स्वर्ग मुक्ति की श्रद्धा के आधार पर ही हो

सकता है। आर्डिनेन्सों के बल पर नहीं, देशभक्ति और कर्तव्य की भावना के आधार पर प्रजा, राज्य की इच्छानुवर्ती बनती है। इन तत्वों को विकसित, उन्नत, उत्साहित एवं सुदृढ़ करना यह कार्य 'दर्शन' की शक्ति से ही होसकता है।

हमारे देश के कर्मठ कार्यकर्ता, सुयोग्य विचारक, देशभक्त, लोक सेवी, धर्म प्रेमी एक मात्र राजनीति की ही महत्ता अनुभव कर रहे हैं और राजनैतिक अधिकार प्राप्त करने, अपनी माँगें मनवाने, इच्छित कानून बनवाने, के लिए ही अत्यधिक आकृष्ट हैं। वे यह भूल जाते हैं कि राजशक्ति ही एक मात्र शक्ति नहीं है, लोक कल्याण के लिए एक दूसरी शक्ति भी है जो उससे भी महत्व पूर्ण है वह है—'दर्शन'। इसके द्वारा वह कार्य होसकता है जो सुदीर्घ काल तक ठहरता है और जिसके आश्रय पर राजनीति का भी उत्थान पतन निर्भर रहता है। दशरथ का संचालन वशिष्ठ करते थे। दशों दिशाओं के जिसके रथ हैं ऐसी मानव सभ्यता का पथ प्रदर्शन शिष्ठ वशिष्ठ के 'दर्शन' का आधार लिये बिना न हो सकेगा, इस लिए जो लोग राजनीति के योग्य हैं वे उसे हाथ में लें और शेष दर्शन के निर्माण में लग जावें। भगवान का अस्त्र सुदर्शन है, दैवी शक्तियों का, संसार की सुख शान्ति का रक्षक भी सु-दर्शन ही है।

आइए, प्राचीन दर्शन को, प्राचीन संस्कृति का पुनः प्रसार करें जिससे समस्त संसार में सुख शान्ति की स्थापना हो और इस भूतल पर ही स्वर्ग के दृश्य दिखाई पड़ें।

अगर तुम सबको खुश रखना चाहते हो तो बुरी आदतों को छोड़ो।

\+ \+ \+

शिकायतें करना डरपोक और कायर का काम है, जो मर्द नहीं हैं, वही दूसरों के सामने अपने दुखड़े रोया करते हैं। कायर मनुष्य अपनी मृत्यु से पहिले अनेकों बार मरता है। + +

हिन्दू संस्कृति महान है।

एक बात विशेष रूप से ध्यान रखने की है कि हिन्दू धर्म कोई सम्प्रदाय, फिरका मजहब या मत मतान्तर नहीं है। यह एक महाविज्ञान है, जिसका उद्देश्य मानव प्राणी को संस्कृति के उच्च शिखर तक पहुंचाना है। इस धर्म में अनेकों मत मतान्तर हैं—सम्प्रदाय हैं—विचार स्वातंत्र्य की पर्याप्त सुविधा दी गई है, छोटी बड़ी अनेकों विचार धारा उपधाराएं प्रचलित हैं, इस प्रकार का बहुमुखी कोई सम्प्रदाय संसार भर में नहीं है। यह सम्प्रदाय की परिभाषा में नहीं आता। इसे राष्ट्र धर्म कहा जासकता है पर असल में यह मानवधर्म है, विश्वधर्म है। इसकी हर एक प्रक्रिया मानव मात्र को दैवी तत्वों से परिपूर्ण बनाने के लिए है।

आत्मा को पवित्र, सशक्त, समृद्ध और परमार्थी बनाने के लिए अध्यात्मवाद के पारंगत आचार्यों से हिन्दू दर्शन का निर्माण किया है। यह धर्म उच्च भूमिका तक पहुंची हुई आत्माओं की अन्तः प्रेरणा से निकला है। इसी को ईश्वर कृत वेद ज्ञान कहते हैं। इस ज्ञान को प्राप्त करके हर नागरिक मनुष्यता को गौरवान्वित करने वाले आदर्शों से परिपूर्ण जीवन, समाज के सामने उपस्थित करे इस उद्देश्य की पूर्ति लिए ऐसा विधान बनाया गया था कि प्रत्येक हिन्दू की आत्मा इस ईश्वरीय ज्ञान से ओत प्रोत हो जाय। आज हमारा धर्म-मंदिरों में, पुस्तकों में, पंडितों की उक्तियों में बन्द है, आज उसे कुछ विशेषों व्यक्तियों के द्वारा, विशेष अवसरों पर प्रयोग होने की वस्तु समझा जाता है पर तब वह हर व्यक्ति की दैनिक जीवन की आवश्यकता थी।

सन्ध्या वन्दन, गायत्री जप और अग्निहोत्र यह नित्यकर्म थे। शिखा और यज्ञोपवीत यह धर्म के दो अर्थ पूर्ण प्रतीक हर समय धारण रहते थे। प्रतिमास त्यौहार, उत्सव, व्रत, पूजन आदि

का क्रम चलता रहता था, समय समय पर विशिष्ट यज्ञ होते थे, जीवन के हर चौराहे पर आगे का सही मार्ग दिखाने के लिए संस्कार होते हैं। जन्म से मृत्यु पर्यन्त १६ चौराहे जीवन में आते हैं उनमें कहीं गलत दिशा में न भटक जाय, इसलिए विशेष आयोजन के साथ उसे धार्मिक शिक्षण दिया जाता था यही १६ संस्कार कहलाते थे। इस व्यवस्थाक्रम के अन्तर्गत अनेकों नियम, उपनियम होते थे उनका पालन करने से मनुष्य के मन पर धर्म की सुदृढ़ छाप बैठती थी और उसके द्वारा उसका चरित्र उच्च कोटि का बनता था। उसी निर्माण के द्वारा, हरिश्चन्द्र, शिव, दधीच, मोरध्वज, कर्ण, अर्जुन, भीष्म, हनुमान, ध्रुव, प्रहलाद, कपिल, कणाद, व्यास, वशिष्ठ पैदा होते थे और सीता, सावित्री, मन्दालसा, अनुसूया, मैत्रेयी जैसी देवियां घर घर देखी जाती थीं।

आज उस प्रणाली की बड़ी दुर्दशा होरही है जिसके द्वारा मानव प्राणी सच्चे अर्थों में हिन्दू बनता था, धर्म के संस्कारों को हृदय में धारण करता था। सोलह संस्कारों पर दृष्टि डालिए। गर्भाधान इन्द्रिय सुख के लिए नहीं, सुसंतति प्राप्त करने के लिए धार्मिक विधि से किया जाता था। बालक के गर्भ में आने पर सीमन्त, पुंसवन इसलिए होते थे, कि भावी माता और गर्भस्थित बालक के हृदयों में सुसंस्कार जमें, जन्म लेते पर जात कर्म, नामकरण होते थे, उसमें जिन गुणों का आरोपण करना होता था वैसा उसका नाम रखा जाता था, माता पिता को बालक के प्रति उनके कर्तव्यों का बोध कराया जाता था, अन्न प्राशन, चूड़ाकर्म में, बालक की भोजन व्यवस्था, क्षौर, वस्त्र एवं लालन पालन के नियम में संबंध में माता पिता को सतर्क किया जाता था। इतने संस्कारों तक बालक अबोध रहता था तो भी वेद मंत्रों की शक्ति से आत्मविद्या परायण पुरोहित इनके अन्तःकरण के गुप्त भाग में उच्च भावनाओं की स्थापना करते थे। इसके बाद गुरुकुल प्रवेश, वेदारंभ, यज्ञोपवीत होता था। इस संस्कार के साथ उसे द्विजत्व की शिक्षा, दीक्षा दी जाती थी, उद्देश्य मय जीवन में पदार्पण कराया जाता था, विद्याध्ययन के उपरान्त समावर्तन होता था, सांसारिक क्षेत्र में प्रवेश करने के सम्पूर्ण कर्तव्यों की जानकारी कराई जाती थी। विवाह होता था, धर्म को साक्षी देकर दो शरीर एक प्राण बनते थे, लोलुपता के लिए नहीं उद्देश्य मय जीवन बनाने के लिए। ग्रहस्थ पालन के उपरान्त वान प्रस्थ लेकर संयम साधना की जाती थी, सन्यास लेकर लोक कल्याण के लिए अपने ज्ञान पुष्ट जीवन को समर्पित किया जाता था। अन्त्येष्ठि के साथ जीवात्मा को सदभावना युक्त बधाई दी जाती थी। इस प्रकार षोड्स संस्कार युक्त हिन्दू जीवन वस्तुतः एक साधन व्यवस्था थी जिसके आधार पर वह आत्मा को परमात्मा, लघु को महान् बनाया जाता था।

श्रावणी विद्याका ब्राह्मणत्व का महोत्सव था, दशहरा अस्त्र शस्त्रों का, पौरुष, पराक्रम का, क्षत्रियत्व का समारोह था, दीपावली सफाई का अर्थ व्यवस्था का, वैश्यत्व का त्यौहार था, होली को छोटे बड़े का विचार छोड़ कर सब लोग सात्विक मनोरंजन, वाद्यगायन के साथ बसंतोत्सव मनाते थे। बहिन भाई के संबंधों में सजीवता लाने के लिए राखी की भैय्यादूज की प्रथायें पूरी की जाती थी, गणेश चतुर्थी (करवा चौथ) को पति की मंगल कामना के लिए पत्नियां उपवास रखती थीं, गुरु पूर्णिमा को शिष्यों द्वारा गुरु का पूजन होता था, ऋषि पंचमी को माता पिता की पूजा होती थी। इस प्रकार अनेकों व्रत उत्सव थे, जिन्हें सुयोग्य पुरोहितों की अध्यक्षता में समारोह पूर्वक मनाया जाता था, वे अपने यजमानों को तत्संबंधी कर्तव्यों का सुविस्तृत ज्ञान कराते थे, उनकी भूलें सुधारते थे और आगे के लिए पथ प्रदर्शन करते थे।

इसके लिए अनुष्ठान, पूजन, प्रतिष्ठा, कथा, यज्ञ आदि के नानाविधि कर्मकाण्डों द्वारा निस्पृह एवं सुयोग्य आचार्यों द्वारा यजमानों के हृदय पर

महान् आर्यत्व का तत्व और गौरव अंकित किया जाता था। उस ढांचे में ढल कर ऐसे महा मानव सामने आते थे जिनके चरणों की धूलिमस्तक पर चढ़ना के लिए सारी दुनियां तैयार रहती थी, जिनके आदर्शों और आदेशों का मान करने वालों की संख्या आज भी सबसे अधिक है। हिन्दू और बौद्ध दोनों ही भारतीय ऋषियों के अनुयायी है, उन दोनों की सम्मिलित संख्या इतनी बड़ी है जिसकी बराबरी में संसार का और कोई धर्म आज भी नहीं ठहर सकता।

आज वे वैदिक प्रणालियां और परम्पराएं किसी प्रकार जीवित तो हैं पर निःस्वत होगई हैं, चिन्ह पूजा शेष रह गई। सोलह संस्कारों में नामकरण, विवाह और अन्तेष्टी की लकीर पिट जाती है। त्योहारों को स्वादिष्ट भोजन बनाने का एक अवसर माना जाता है। अब इन संकारों और त्यौहारों को इस प्रकार नहीं मनाया जाता, जिससे इनके पीछे छिपे हुए प्राणप्रद इतिहासों, उद्देश्यों और प्रेरणाओं से लोग लाभ उठावें। न जनता में वह श्रद्धा है कि इन सांस्कृतिक भण्डारों को खोल कर उसमें से अपनी प्राचीन रत्न राशि को तलाश करे, न पुरोहितों में इतनी विद्वत्ता, मेधा, धर्म भावना, निस्पृहता है कि वे इस ऋषि संचित अमृत को छिड़क कर मूर्च्छित हिन्दू धर्म को, महान मानवता को, पुनः जागृत करें। इस दुर्भाग्य पूर्ण विवशता को देखकर हमारे पूर्वजों की आत्माएं आठ आठ आंसू रोती होंगी। जिस ज्ञान के बल पर उन्होंने चक्रवर्ती शासन और जगद्गुरु का पद प्राप्त किया था उस ज्ञान की ऐसी दुर्दशा उनकी संतानों द्वारा, उन्हीं की पुण्य भूमि में होगी, ऐसा उन्होंने कभी स्वप्न में भी विचार न किया होगा।

अखंड ज्योति हिन्दू धर्म की महानताओं विशेषताओं प्रथाओं, परम्पराओं, व्रतों, उत्सवों, त्यौहारों, संस्कारों के संबंध में सुविस्तृत ज्ञान कराने वाले लेख आगामी जनवरी से देना

हिन्दू धर्म का प्रसार कीजिए

वेद के दो अंग है (१) ज्ञान (२) विज्ञान। ज्ञान–आत्म ज्ञान को कहते हैं जिसके द्वारा मनुष्य के अन्तर्जगत का, विवेक का, दृष्टिकोण का निर्माण होता है। उसी के आधार पर उसकी इच्छा, आकांक्षा, रुचि, एवं क्रिया का विकाश होता है। विज्ञान—लौकिक एवं भौतिक जानकारी को कहते हैं, जिससे लोक जीवन को सुविधा पूर्वक जिया जासके, भाषा, लिपि, साहित्य, गणित, संगीत, रसायन, शिल्प आदि अनेकों शिक्षाएं विज्ञान के अन्तर्गत आती हैं। इन ज्ञान और विज्ञान दोनों के द्वारा मनुष्य का व्यक्तित्व विकसित होता है।

विज्ञान से शरीर यात्राके सुसंचालन में सुविधा होती है, पर ज्ञान के द्वारा अन्तर्जगत् की आधार शिला रखी जाती है, इस शिला पर ही मनुष्य की महानता और प्रयत्न शीलता निर्भर रहती है, जिसके बिना कि विज्ञान को भी भली प्रकार ग्रहण नहीं किया जासकता। इसलिए विज्ञान से ज्ञान का दर्जा बहुत ऊंचा है। विज्ञान के शिक्षक जगह जगह मौजूद हैं, नीच कोटि के लोगों द्वारा भी सिखाया और सीखा जासकता है। पर ज्ञान का स्थान ऊंचा है, उसे ऊंची आत्माएं सिखाती हैं और मस्तिष्क से नहीं हृदय द्वारा उसे सीखा जाता है। यही धर्म शिक्षा है।

वैदिक ज्ञान एक अमृत है, जो वस्तु जितनी ही उपयोगी एवं आवश्यक है उसे अभाव ग्रस्तों के लिए उपलब्ध करना उतना ही बड़ा पुन्य गिना जाता है। इसीलिए ब्रह्मदान को, ज्ञान दान को सबसे बड़ा दान कहा गया है। इसकी तुलना में अन्न वस्त्र, गौ आदि के भौतिक दान बहुत

आरंभ करेगी। छोटे छोटे ट्रैक्टों द्वारा भी उन महान रहस्यों को घर घर पहुंचाने का एक विशाल योजना के साथ प्रयत्न किया जायगा।

हलके हैं। हिन्दू दर्शन का ज्ञान, मनुष्य के लिए एक आध्यात्मिक अखंडज्योति है। जिसके द्वारा पाप, ताप और अज्ञान के चंगुल में फंसा हुआ प्राणी, सत्य की ओर प्रकाश की ओर उन्मुख होता है। और भ्रम एवं अधर्मजन्य दारुण दुखों से बचकर स्वर्गीय शान्ति का लाभ करता है। इस ज्ञान रूपी अमृत का अधिक से अधिक विस्तार करना, इसकी छाया में अधिक से अधिक लोगों को आश्रय दिलाना ऊंचे दर्जे का पुण्य परमार्थ है। हिन्दू जाति सदा सामूहिक रूप से इस पुण्य को अर्जित करने के लिए विशेष रूप से प्रयत्न शील रही है।

भगवान बुद्ध के शिष्यों ने एशिया भर को भारतीय संस्कृति का वितरण किया था, वे लोग सुदूर देशों में गये थे और वहां बुद्ध के अहिंसा धर्म में विविधि जातियों को दीक्षित किया था। आज भी भारत से बाहर पूर्वी एशिया के एक विशाल क्षेत्र में बौद्ध धर्म का अवशेष मौजूद है। इससे पूर्व काल में तो सदा ही यहां के प्रचारक संसार भर के सुदूर प्रदेश में धर्म प्रचार के लिए जाते थे, वहां की प्रजा को वेद के ज्ञानामृत से तृप्त करते थे, उस जनता के विशेष आग्रह से वहाँ की राज्य व्यवस्था चलाने का भार भी वे निस्वार्थ भाव से अपने ऊपर उठा लेते थे यही आर्य साम्राज्य था। इसी विधि से भारत के राजा चक्रवर्ती कहे जाते थे। उस समय आज के जैसे शोषक साम्राज्यवाद की गंध भी न थी। राम ने सोने की लंका विजय करके उसमें से एक लोहे की कील भी अयोध्या लाने का प्रयत्न नहीं किया।

प्राचीन इतिहास के पन्ने पन्ने पर हमें यह प्रमाण भरे मिलते हैं कि ऋषियों ने सदा हिन्दू संस्कृति में हिन्दू दर्शन में संसार भर की प्रजा को दीक्षित करने का प्रयत्न जारी रखा। अन्य मतावलंबियों के सामने महान वैदिक आदर्शों को रख कर वे सिद्ध कर देते थे कि इन सिद्धान्तों की महत्ता कितनी ऊंची है। इस प्रकार जिधर भी वे निकलते थे, अन्य मत मतान्तरों को त्याग कर लोग वेद धर्म को स्वीकार कर लेते थे। सुदूर अमेरिका तक में एक समय भारतीय संस्कृति का प्राधान्य था वहां अब भी पुरातत्व विभाग को ऐसे अवशेष मिलते हैं जिनमें प्रतीत होता है कि एक समय अमेरिका में हिन्दू धर्म था। ईरान, तुर्की, पर्शिया, अफगानिस्तान, अरब, मिश्र आदि देशों में तो डेढ़ हजार वर्ष पूर्व तक हिन्दू धर्म का प्राधान्य था। असंस्कृतों को संस्कृत बनाने के लिए, संसार पर अमर ज्ञान की वर्षा करने के लिए, विश्व को आर्य-श्रेष्ठ-बनाने के लिए हमारे ऋषियों ने भागीरथ प्रयत्न किया था और उस महान सभ्यता से संसार भर के निवासियों को दीक्षित किया था।

दुर्भाग्य ने हमारी इस स्वर्ण शृंखला को टूकर कर डाला। "विनाश काले विपरीत बुद्धि" को हमने चरितार्थ किया, इस ज्ञान दान के द्वार को हमने मजबूती से बन्द कर दिया। इस कल्पवृक्ष की छाया में भूले भटकों को आश्रय देने के धर्मलाभ से विमुख होकर जरा जरा से कारणों पर उन लोगों को भी बहिष्कृत करना आरंभ कर दिया जो इसकी छाया में शान्ति लाभ कर रहे थे। दुर्भाग्य ने हिन्दू जाति के मस्तिष्क में यह भाव उत्पन्न कर दिये कि मर कर फिर हिन्दू घर में जन्म लेने के सिवाय अन्य किसी उपाय से कोई व्यक्ति हिन्दू धर्म में प्रवेश नहीं कर सकता। कोई आदमी हिन्दू सिद्धान्तों पर चाहे कितनी ही अगाध श्रद्धा रखे, उन्हीं आदर्शों में अपना जीवन बिताना चाहे पर उसको हिन्दू समाज में नहीं लिया जा सकता। मनुष्य समाज जीवी प्राणी है उसे जिस समाज में रहकर जीवन व्यतीत करना पड़ता है, उसी के विचारों को भी वह अपनाता है। धर्म का विस्तार करना तो दूर उसमें प्रवेश करने के इच्छुकों के लिए द्वार बन्द कर दिए गए।

दूसरी ओर जरा जरा से कारणों, पर बहिष्कार को जोर बढ़ा। मुसलमानी शासकों में

बलात् जि स्त्री पुरुषों का धर्म भ्रष्टकर दिया था, धोखे से कोई अखाद्य खिला दिया था, प्रलोभन में बहकालिया था, वे लोग मुद्दतों तक क्रन्दन करते रहे कि हमें कठोर प्रायश्चित्त कराके क्षमा कर दिया जाय पर अनुदारता ने उन क्रन्दन करने वालों को निष्ठुरता पूर्वक लातों से ठुकराया। सैकड़ों वर्षों तक वे इसी प्रतीक्षा में रहे, कुछ तो अब तक हैं। उनके यहां ए दो रिवाज मुसलमानी और शेष प्रथाऐं हिन्दू की बरती जाती हैं, उन्होंने सदा प्रार्थनाऐं की कि हमें अपना लिया जाय पर उत्तर निराशा जनक ही मिला।

प्रसिद्ध है कि अकबर ने हिन्दुओं से प्रार्थना की कि मुझे हिन्दू बना लिया जाय। वीरबल इसका उत्तर देने के लिए गधे को गंगा स्नान कराने लगे। बादशाह ने पूछा—यह क्या कर रहे हो? उत्तर मिला—गधे को गाय बना रहा हूं। अकबर ने हैरत से कहा—यह ना मुमकिन है। उत्तर में बीरबल ने भी कहा—मुसलमान का हिन्दू होना नामुमकिन है। आज हमारे देश में दस करोड़ मुसलमान हैं, इतनी संख्या कहाँ से आई? आक्रमणकारी के रूप में तो सात हजार मुसलमान आये थे, यह इतनी बड़ी संख्या उन बहिष्कृत हिन्दुओं की है जिनको जरा सी बात पर लात मार कर हमने अपने समाज से बाहर कर दिया है और उनके लाख प्रार्थना करने पर भी छाती पर निष्ठुरता का पत्थर रख लिया है। क्रिया की प्रतिक्रिया अवश्यम्भावी है। एक कुए में मुंह करके जो शब्द उच्चारण किए जाते हैं वे ही प्रतिध्वनि बन कर वापिस गूंजते हैं। तिरष्कार के प्रति ध्वनि घृणा में उत्पन्न होती है। हम देखते हैं कि बहिष्कृतों की घृणा, प्रतिहिन्सा, बदले की भावना, आज नग्न नृत्य कर रही है, जहर बरसा रही है, ऐसे हत्याकाण्ड उपस्थित कर रही है जिसकी भयंकरता देखकर अवाक् रह जाना पड़ रहा है।

कथा है कि दुर्वासा के क्रोध से एक राक्षस पैदा हुआ, वह अम्बरीष के ऊपर आक्रमण में विफल होकर उलटा दुर्वासा के पीछे दौड़ा। दुर्वासा को भारी संकट का सामना करना पड़ा और मुश्किल से उनके प्राण बचे। आज भी ऐसी ही परिस्थिति है। अविवेक पूर्ण तिरष्कार और बहिष्कार की प्रतिक्रिया घृणा और शत्रुता के भाव लेकर उमड़ पड़ी है, उसकी आग से हम बुरी तरह झुलस रहे हैं। यदि समय रहते भूल को सुधार लिया गया होता तो इतने प्रचंड प्रतिरोध द्वारा, इतना बड़ा अनिष्ट होने की नौबत क्यों आती?

भूल चाहे किसी ने की हो, कितने ही लम्बे समय से की हो, पर उसे अन्ततः सुधारना ही पड़ेगा। न सुधारा जाय तो वह मांस में गड़े हुए कांटे की तरह सदा दुख देती रहेगी। लोग प्यासों को पानी पिलाने के लिए प्याऊ लगवाते हैं, कुए तालाब बनवाते हैं, थके हुए निराश्रित पथिकों के लिए धर्मशाला, बगीचे बनवाते हैं। फिर क्या हमारे लिए यह उचित है कि अपनी संस्कृति और दर्शन का शीतल आश्रय लाभ करने से, आत्मिक थकान वाले पथिकोंको वंचित रखें? जो लोग हिन्दू धर्म की शरण में आना चाहते हैं उन्हें प्रोत्साहन देने के स्थान पर यदि उनके मार्ग में बाधक बनते हैं तो यह उन महर्षियों के प्रति हमारा एक अक्षम्य अपराध होगा जिन्होंने मानव मात्र के लिए हिन्दू धर्म के महा विज्ञान की रचना की थी।

आज हम निद्रात्याग कर जाग रहे हैं। हमारा कर्तव्य है कि हिन्दू धर्म के भण्डार में जो अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं उन्हें संसार के संमुख उपस्थित करें, उनकी महत्ता को प्रकाश में लावें, और जो उसकी शरण में आना चाहें सहर्ष उनका स्वागत करें। नवागन्तुकों के साथ रोटी बेटी का व्यवहार होना कोई अनिवार्य शर्त नहीं है। हिन्दुओं में अनेकों जातियाँ उपजातियां हैं उनका रोटी बेटी व्यवहार उन्हीं लोगों के बीच सीमित दायरे में होता है। नवागन्तुकों की एक और जाति बन

सकती है, जिसका रोटी बेटी व्यवहार आपस में चलता रहे। शेष व्यवहार सब लोगों का उनके साथ वैसा ही हो जैसा हिन्दू मात्र के साथ होना उचित है। इस प्रकार रोटी बेटी व्यवहार की शर्तों को कड़ी न करने से ऐच्छिक बात रहने देने से कट्टर पंथी लोगों का भी सहयोग प्राप्त होसकता है। आज हमारे लाखों करोड़ों भाई पुनः अपनी पैतृक संस्कृति में वापिस लौटने के लिए तड़प रहे हैं। उनकी सहानुभूति सूचक उत्तर देना ही हमारा कर्तव्य है। मथुरा से सटे हुए पड़ौसी प्रदेशों (अलवर और भरतपुर) में बहुत बड़ी संख्या में मुसलमानों ने अपना प्यारा हिन्दू धर्म पुनः ग्रहण किया है। इस प्रकार उन्हें प्रोत्साहन और पथ प्रदर्शन प्राप्त हो तो बड़े पैमाने पर यह प्रगति देश भर में हो सकती है। अखण्ड ज्योति केवल विचार द्वारा ही नहीं कार्यों द्वारा भी, निकट प्रदेशों में नहीं सुदूर प्रान्तों में भी यह प्रयत्न विस्तरित करेगी। आइए आप भी इन प्रयत्नों में हाथ बटाइए।

प्रेम आंखों से नहीं हृदय से देखता है। इसलिए प्रेम अंधा है।

\+ + +

क्रूर और दुखदाई व्यक्ति कभी सच्चे आनन्द को नहीं प्राप्त कर सकता।

\+ + +

जिस मनुष्य से अपने देश को कोई लाभ नहीं, उससे मिट्टी का खिलौना अच्छा है जो बच्चों का दिल तो बहलाता है।

\+ + +

सिर्फ पुस्तकें पढ़ करके कुतर्क करने वाला अथवा दूसरों को उपदेश देकर स्वयं क्रिया से पृथक् रहने वाला सच्चा पण्डित नहीं है, परन्तु ज्ञान के साथ जो स्वयं क्रिया का आचरण करता है, वही सच्चा पण्डित है।

\+ +

हिन्दू कौन है ?

हिन्दू उसे कहते हैं जो भारत वर्ष को अपनी मातृभूमि, पितृभूमि और धर्म भूमि मानता है।

(१) मातृ भूमि अर्थात् जन्म भूमि। जो अपनी जन्म दाता–माता–भारत भूमि को मानता हो। (२) पितृभूमि–अर्थात् पूर्वजों की भूमि। जो भारतवर्ष को अपने पूर्वजों की भूमि मानता हो (३) धर्मभूमि–अर्थात् अपने धर्म की उत्पत्ति भूमि, तीर्थ भूमि, मानता हो, वह हिन्दू है।

जिस व्यक्ति की उपरोक्त तीन मान्यता हैं वह भारत माता का सच्चा पुत्र कहलाने का अधिकारी है। उसे हिन्दू कहा जासकता है। इस दृष्टि से भारत वर्ष के, सनातन धर्मी आर्यसमाजी, जैन, बौद्ध, सिख, शैव, शाक्त, वैष्णव, कबीर पंथी दादूपंथी तथा अन्यान्य मत मतान्तरों को मानने वाले सभी हिन्दू हैं। चोटी इस हिन्दुत्व का प्रतीक है। गौ माता का सम्मान हर हिन्दू के हृदय में होता है।

हिन्दुओं में विचार स्वातंत्र्य की प्रतिष्ठा है। अनेकों मत, सिद्धान्त, विश्वास उनमें प्रचलित हैं। पर उनका दर्शन और संस्कृति एक है। देवभाषा संस्कृत में भरे हुए भण्डार से उनकी भाषा और भावनाओं का पथ प्रदर्शन होता है। इस एकता के केन्द्र पर वे सभी केन्द्रित होते हैं।

हिन्दुओं का संसार को एक विशेष संदेश है–वह है "भौतिक वाद की तुच्छता अनुभव करते हुए आत्मिक गुणों की प्रतिष्ठा करना" इस संदेश में ही विश्व शान्ति का स्थायित्व छिपा हुआ है आज संसार को उसी संदेश की तलाश है।

आज संसार पूछता है कि हिन्दुस्तान तो मौजूद है पर यहां हिन्दू कौन है ? भारत माता को अपनी मातृभूमि, पितृभूमि और धर्म भूमि समझने वाले हिन्दुओ ! अपनी अमृतमयी संस्कृति से अशान्त विश्व को शान्त करो और अपने आदर्शों को चरितार्थ करके बताओ कि हिन्दू कैसा है ? हिन्दू कौन है ?

ब्राह्मणत्व और साधुता का जागरण।

अज्ञान मनुष्य जाति का सबसे बड़ा शत्रु है, उसके कारण पग पग पर अगणित कष्ट एवं क्लेशों का सामना करना पड़ता है। इस आपत्ति से संसार को बचाने के लिए, ज्ञान जन्य सुख समृद्धियों को बढ़ाने के लिए हमारे देश में कुछ उदारमना व्यक्ति अपना जीवन अर्पण करते थे। कार्य महान था, उसकी महत्ता इतना बड़ी थी कि समस्त भूलोक की सुख शान्ति उस पर निर्भर है। इस गुरुतर उत्तर दायित्व को अपने कंधे पर लेने वालों को पूरी सावधानी, दिलचस्पी, लगन, मेहनत तथा ईमानदारी से जुटना पड़ता था। वे लोग अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को अत्यंत सीमित करते थे ताकि निजी उलझनों में उनकी शक्तियां कम से कम खर्च हो। जो आवश्यकताएं अनिवार्य थीं उनको वे समाज के ऊपर छोड़ देते थे। जनता उनके भोजन, वस्त्र आदि की व्यवस्था धर्म बुद्धि के साथ करती थी। ज्ञान विज्ञान के स्तम्भ यह महापुरुष "ब्राह्मण" नाम से पुकारे जाते थे। ब्राह्मणों को "भूसुर" पृथ्वी के देवता कहा गया है। उनका ज्ञान वर्धन कार्य, त्याग-सेवा भाव सचमुच इसी योग्य था कि उन्हें भूसुर की गौरव मयी उपाधि से अलंकृत किया जाय और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जो कुछ दिया जाय वह अत्यंत सम्मान पूर्वक, दिया जाय। यह ब्राह्मण-जातीय जीवन के मस्तिष्क कहे जाते थे, उनसे राजा और प्रजा सभी को प्रेरणा मिलती थी। वे धर्म, अध्यात्म, नैतिकता, सदाचार, एकता एवं प्रेम का प्रचार करते थे साथ ही चिकित्सा, रसायन, खगोल, भूगर्भ, शिल्प, कृषि विज्ञान आदि के नये नये आविष्कार करते थे। उनके समस्त जीवन का एक एक क्षण लोक हित के लिए लगता था।

ऐसे उपकारी तपोपूत, ब्रह्म परायण ब्राह्मणों के चरणों में सबके मस्तक नवते थे। उनको दान देते हुए देने वाले का अन्तःकरण आनन्द से भर आता था। पर आज तो सब कुछ उलटा होरहा है। ब्रह्म परायण, लोकसेवी तपोपूत ब्राह्मण, पुरोहित, गुरु, उपदेशक, साधु, सन्यासी, महात्माओं के दर्शन दुर्लभ होरहे हैं, उनके स्थान पर साठ लाख भिक्षुकों की एक ऐसी सेना विराजमान होगई है जो संसार को देती कुछ नहीं परन्तु लेने के लिए अनेकों उचित अनुचित आडम्बर बनाये बैठी है। अपना व्यक्तिगत लाभ उनका उद्देश्य है-स्वयं स्वर्ग लाभ करने मुक्तिपाने के लिए तथाकथित कर्मकाण्डों की चिन्ह पूजा करते हैं पर अपने चारों ओर होरहा चीत्कार उनके कानों तक नहीं पहुंचता। अपने पूर्वजों के पवित्र नाम पर-उनके उत्तराधिकारी के नाम पर दान और प्रतिष्ठा तो प्राप्त करते हैं पर पूर्वजों के महान उत्तरदायित्वों को, कर्तव्यों को, आदेशों को पूरा करने से दूर रहते हैं। शरीर में मस्तिष्क का पतन होजाय तो जो कुछ दुर्दशा न हो थोड़ी है। जिस जाति के जातीय मस्तिष्क ब्राह्मणत्व का अधः पतन होजाय उसका ईश्वर ही रक्षक है।

नव जागरण की इस वेला में अपने जातीय गौरव को पुनः प्राप्त करने के लिए हमें अग्रसर होना है। इस कार्य के लिए मस्तिष्क को सब से आगे आना होगा, सबसे प्रमुख भाग लेना होगा। प्रातस्मरणीय ऋषियों की वंशज ब्राह्मण, मुनि महात्माओं के अनुयायी साधु सन्यासी आजकल करीब साठ लाख हैं, यह विशाल सेना यदि जनता का उद्बोधन करने के लिए उठ खड़ी हो, जिन्होंने पीढ़ियों से दान देकर पालापोसा है उनके आड़े वक्त में काम आकर अपनी कुछ नमक हलाली दिखावे और अपने कर्तव्य को पालन करे तो चंद दिनों में हमारा

देश कुछ से कुछ हो सकता है। गृहस्थी का झंझट पीछे न होने से और दान के निर्धारित स्रोतों से जीविका की समुचित व्यवस्था होने से उस वर्ग को कार्य करने में बड़ी भारी सुविधा है। प्रति पचास गृहस्थों के पीछे एक भिक्षाजीवी की औसत है। यदि वे पचास पचास व्यक्तियों के छोटे छोटे समूहों की सेवा करने के लिए बैठ जांय तो उन्हें चाहे जिस ढांचे में ढाल सकते हैं। उन्हें चाहे जिधर प्रेरित कर सकते हैं। वे जिस बात का प्रचार करने उतर पड़ें उसे बच्चे बच्चे के मस्तिष्क में भर सकते हैं, जिस कार्य को करने खड़े हो जांय उसे एक एक उंगली लगा कर पूरा कर सकते हैं। किसी काम के लिए धन एकत्रित करना हो तो हफ्तों के अन्दर अरबों रुपया जमा कर सकते हैं, किसी शासन से बिगड़ खड़े हों तो उसकी नींव हिला सकते हैं। बलिदान करने को शीशदान करने का खड़े हो जांय तो गंगा और यमुना को रक्त से लाल कर सकते हैं। यह जिस दिशा को मुड़ पड़ें उसी को धूलि-धूसरित कर सकते हैं। पाकिस्तान के अभागे हिन्दुओं की प्राण रक्षा के लिए चल पड़ें तो उनका बाल बांका होने से भी रोक सकते हैं।

इस सेना की अपार शक्ति है, बिना नौकरी के सेवक, बिना वर्दी के सैनिक, यह साठ लाख ब्रह्म वंशजों की सेना अपने कर्तव्य और धर्म की प्रचंड प्रेरणा के साथ जिधर भी बढ़ेगी उधर मोर्चा फतेह करेगी, इसे न कप्तानों की जरूरत है, न रसद की, न गोला बारूद की, सब चीजें इसके साथ हैं। पीछे के लिए कोई चिन्ता उन्हें नहीं। हमारी यह धर्म सेना आज आलस्य, प्रमाद और भ्रान्ति के फेर में पड़ी हुई है। इसे जब जगाया जायगा और अपने स्वरूप को पहचान कर उठ खड़ी होगी, तो जो कार्य, सरकार और संस्थाएं अथक परिश्रम द्वारा भी नहीं कर पा रही है उसे यह सेना स्वल्पकाल में बड़ी आसानी से पूरा करके दिखा सकती है।

जरूरत सेना बनाने की नहीं, बनी हुई सेना को जगाने की है। यह जागरण कार्य कठिन है। पर अखण्ड ज्योति अपने को इस सेवा के लिए स्वयं समर्पित करती है। हम लोग देश भर में भ्रमण करके साधु संस्थाओं से, मठाधीशों से, महन्तों से, जमातों और अखाड़ों के गद्दीधारी गुरुओं से, तीर्थ पुरोहितों से, पंडित मंडलियों से, संत महात्माओं से, आश्रम संचालकों से, संस्कृत पाठशालाओं के अध्यापकों से व्यक्तिगत रूप से, सामूहिक रूप से मिलेंगे और उन्हें लेखनी एवं वाणी से इसके लिए प्रेरित करेंगे कि जातीय जीवन की जागरण वेला में वे रचनात्मक कार्य करें। हिन्दुत्व को पुनः प्राचीन पद तक पहुंचाने के लिए वे समस्त शक्ति के साथ जुट जावें। स्वर्ग या मुक्ति की प्राप्ति में यदि एक जन्म की देरी हो जावे तो यह थोड़ी देर सबेर अनन्त जीवन में कुछ विशेष महत्व नहीं रखती। पर यह जन्म तो लोक जागरण के लिए लगना चाहिए। अखण्ड ज्योति ने देश के धर्म क्षेत्र और अध्यात्म क्षेत्र में जितना प्रवेश पालिया है उसकी दृढ़ता और विस्तृतता के आधार पर पाठक यह आशा कर सकते हैं कि आगामी एक वर्ष में समस्त भिक्षु संस्था का सौवां भाग—साठ हजार का एक समूह देशोत्थान के कार्य में अवश्यमेव प्रवृत्त होगा। इस समुदाय को सामने प्रधान उद्देश्य मनुष्य मात्र के हृदय में हिन्दू संस्कृति के प्रति अगाध प्रेम विश्वास और तदनुसार कार्य करने के लिए प्रेरित करना होगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए संगठन, गोष्ठियां, पंचायतें, व्यायामशालाएं, पाठशालाएं, एवं ज्ञान मंदिर स्थापित करने की जहां जैसी आवश्यकता अनुभव होगी वहां वैसा करेगा। कार्य बिलकुल रचनात्मक होगा। कार्यकर्ता भिक्षा द्वारा अपने निर्वाह के लिए अन्न वस्त्र प्राप्त करेंगे। धन को वे स्वयं स्पर्श न करेंगे। यात्रा पैदल करेंगे।

इस समुदाय में से कम से कम एक हजार साधु पंजाब एवं बंगाल जायेंगे और वहीं बस जायंगे, वहां उनका कार्य शान्ति स्थापना का होगा।

राजनैतिक हलचलों एवं उत्तेजनाओं से सर्वथा दूर रहकर वे अपने क्षेत्र के लोगों को सद् ज्ञानामृत का पान करावेंगे।

हमारे मंदिरों में ईश्वर भक्ति के साथ साथ ईश्वर के आदेशों का पालन करने की प्रेरणाओं का भी केन्द्र बनना चाहिए। जो लोग ब्राह्मणत्व के नाम पर जीविका प्राप्त करते हैं उनका अनिवार्य कर्तव्य होना चाहिए कि जाति को ऊंचा उठाने में अपने समय का क्रियात्मक उपयोग करें। ब्राह्मण एवं साधु समाज का इन कर्तव्यों को सुझाने, मनवाने और कार्यारूढ़ करने के लिए यदि विशेष रूप से प्रेरणा दी जायगी तो जो सच्चे होंगे वे आगे बढ़ेंगे और जो झूठे होंगे वे आडम्बर की चादर फेंक कर भाग जायेंगे। हम जनता को जागृत करेंगे। जब ब्राह्मणत्व और साधुत्व कसौटी पर कसा जायगा, अग्नि में तपाया जायगा तो खोटे माल की अपने आप छांट होजायगी। दूध पीने वाले मंजनू, कटोरा फेंक कर भाग खड़े होंगे।

वर्तमान ब्राह्मण संस्था और साधु संस्था में से जितना भी अधिक से अधिक उपयोगी अंश निकाला जासकेगा, उसे निकालने के लिए हम हर संभव प्रयत्न को काम में लावेंगे। फिर भी केवल इतने मात्र से काम न चलेगा। आग लगती है तो सबों को पानी लेकर दौड़ना पड़ता है, चाहे कोई किसी भी पेशे वाला क्यों न हो। आपत्ति काल में, निर्माण में विशेष अवसरों पर सभी को एक कार्य करना पड़ता है। आज भी वैसा ही अवसर है। राष्ट्र की आत्मा को जगाने के लिए गिरे हुए हिन्दुत्व को ऊपर उठाने के लिए आज सभी को प्रयत्न करना है। हर मनुष्य में रहने वाले ब्राह्मणत्व से साधुता से हम गंभीर अपील करते हैं कि वह जागृत हो और पुनरुत्थान के कार्य में सहयोग प्रदान करें।

———

जिस क्रिया से मनोवृत्तियां शुद्ध हों उसी का नाम है—धार्मिक क्रिया। + +

इन प्रस्तावों पर विचार कीजिए

———

नीचे बीस प्रस्ताव उपस्थित किये जारहे हैं। प्रस्तावक का विचार है कि इनके अनुसार कार्य होने से जातीय जीवन की शक्ति बढ़ेगी। आप इन प्रस्तावों पर गंभीरता पूर्वक विचार कीजिए और इनमें से जितना अंश उपयोगी समझते हों उसे अपने निकटवर्ती क्षेत्र में प्रचलित करने का अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रयत्न कीजिए। ऐसे अन्य सुझावों का भी स्वागत किया जायगा।

(१) सनातनी, आर्यसमाजी, सिख, जैन, बौद्ध, आदि हिन्दू जाति के अभिन्न अंगों में जो आज जो प्रथकता के भाव घर किये हुए हैं—क्या यह उचित है? धार्मिक विचारों में भिन्नता रखते हुए भी इन सब की सामजिक एकता आवश्यक है। आज प्रथकता का नहीं एकता का युग है, एकता की शक्ति का अनुभव करके हम सबों को एक सूत्र से दृढ़ता पूर्वक बंधने का और प्रथकता फैलाने वाले तत्वों को निरुत्साहित करना चाहिए।

(२) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इन चारों वर्णों की प्रथकता गुण, कर्म, स्वभाव के ऊपर आधारित है। इससे वंश परम्परा से प्राप्त अपने कार्य में दक्षता प्राप्त होती है। समान विचारों कार्यों और स्वार्थों वाले लोगों का उत्तम संगठन एवं रक्त मिश्रण होता है। इस दृष्टि से वर्णों की प्रथकता उचित है। परन्तु क्या नीच ऊंच का भाव रखना भी उचित है? कोई भी व्यवसाय जो ईमानदारी और लोकहित की दृष्टि से विवेक पूर्वक किया जाता है, प्रतिष्ठा प्राप्त करने योग्य है। सभी वर्ण समान हैं, सभी का महत्व समान है, सभी को सम्मान और समान नागरिकता प्राप्त करने का अधिकार है। ऊंच नीच, घृणा अहंकार और असमानता के भावों का अन्त होना चाहिए।

(३) पवित्रता, स्वच्छता, निरोगता

संस्कार एवं मनुष्य शरीर की विद्युत शक्ति के आधार पर अस्पृश्यता अवलम्बित है। इन्हीं दृष्टियों से छूत छात का विचार रखना चाहिए। किसी वंश विशेष में जन्म लेने के कारण किसी को जीवन भर के लिए अछूत ठहरादेना उचित नहीं। जो गिरे हुए हैं उन्हें ऊंचा उठाना चाहिए।

(४) जातियों के अन्दर इतनी उपजातियाँ बंट गई हैं कि उनसे जातीय संगठन निर्बल, होते हैं और रोटी बेटी व्यवहार का क्षेत्र बहुत संकुचित होने से कठिनाइयां बढ़ती हैं? क्या यह उचित न होगा कि उपजातियां अपनी मूल जाति के अन्तर्गत अपने व्यवहारों को विस्तृत करें?

(५) दान के अधिकारी और अनधिकारी लोगों की छांट करने के लिए एक कसौटी नियत की जानी चाहिए। जो अनधिकारी हैं उन्हें धर्म के नाम पर दान लेने और देने का निषेध होना चाहिए। कार्य, चरित्र, योग्यता और आवश्यकता के अनुरूप ही विवेक लोक हित के लिए व्यक्तियों अथवा संस्थाओं को दान दिया जाना चाहिए। अनधिकारियों को दान देने से उनकी संख्या बढ़ती है और अनैतिकता फैलती है।

(६) विवाह संस्कार में आज कल हमारे यहां अत्यधिक विकृति आगई है। शेखी खोरी, झूठे बड़प्पन एवं ख्याति के झूठे प्रलोभनों के कारण धन का अहंकार पूर्ण अपव्यय किया जाता है। लड़के वाले दहेज की बड़ी बड़ी रकमें एंठने के लिए कन्या पक्ष को विवश करते हैं। यह कुरीतियां हटाकर विवाह को सात्विक धर्म संस्कार बनाना चाहिए ताकि धनाभाव के कारण योग्य कन्याएँ योग्य वरों तक न पहुंचने की बाधा मिट जाय और कन्या का जन्म किसी को भार प्रतीत न हो।

(७) प्राचीन समय में सब कोई पूर्ण आयु प्राप्त करके मरते थे और सभी धन सम्पन्न होते थे, उस समय मृत भोजों का महत्व था, पर अब तो अधिकांश लोग अल्पकालिक जीवन में ही अकालमृत्यु से मरते हैं, उनकी मृत्यु से न तो किसी को खुशी होती है और न अब जन साधारण की आर्थिक स्थिति उतनी अच्छी है जिससे बहु व्यय के साथ मृतकोत्सव के भोज देसकें। अतएव आवश्यक धार्मिक कर्मकाण्ड एवं मर्यादित भोज के अलावा बड़े बड़े मृत भोजों को निरुत्साहित करना चाहिए।

(८) पीर, मुरीद, कब्रिस्तान, मियां, मसानी, भूत, पलीत आदि की अन्धविश्वास जन्य का मान्यताओं का अन्त होना चाहिए। हमारे यहां सच्चे देवताओं की क्या कमी है जो इस निम्न श्रेणी तक उतरा जाय?

(९) इतने छोटे बालकों के विवाह न हों जिससे ब्रह्मचर्य में बाधा हो, कन्याओं विक्रय और वृद्ध विवाह न हों। विधुर एवं विधवाओं के सामने ब्रह्मचर्य से रहने का आदर्श हो, पर यदि वे उसे पालन करने में अपने को असमर्थ समझते हों तो उन पर न तो बलात् प्रतिबन्ध लगाया जाय और न बहिष्कार किया जाय।

(१०) सामाजिक अपराधों के लिए— प्रायश्चित्य, अर्थ दंड या अन्य कोई कितना कठोर दंड के लिया जाय पर "जाति बहिष्कार" न किया जाय। जातिच्युत कर देने से व्यक्ति के पतन का मार्ग खुलता है। अपमान के कारण उसके मनमें ढीठता और प्रतिहिंसा के भाव जाग पड़ते हैं। आज के करोड़ों मुसलमान हमारे जातिच्युत भाई ही हैं!

(११) हमारे धर्म में प्रवेश करने का सबके लिए द्वार खुले रहें। सच्चे हृदय से, अपनी निष्ठा की सचाई का प्रमाण देकर जो कोई हिन्दू धर्म दीक्षित होना चाहे उसका स्वागत होना चाहिए।

(१२) तीर्थस्थान, धर्मस्थान, देव मंदिर, साधु संस्था, ब्राह्मण समाज आदि धर्म प्रतीकों की कार्य प्रणाली एवं व्यवस्था इस प्रकार करदी जावे कि वे व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति करने के

साधन न रह कर हिन्दू संस्कृति के प्रेरणा केन्द्र बन जावे।

(१३) गौ पालन, गौ रक्षण और गौ वर्धन के लिए ठोस कदम उठाये जायें।

(१४) जातीय, महत्ता, वैज्ञानिकता, संस्कृति, इतिहास, प्रथा, परम्परा, आदर्श-सिद्धान्त उनके प्रतिफल एवं तत्संबंधी समस्याओं को समझाने की शिक्षा की एक व्यापक योजना बनाई जाय। जिसमें पढ़े लिखे और बिना पढ़े सभी समान रूप से लाभ उठा सकें। बिना पढ़े लोगों को कथा, उपदेश, भजन, गायन, चित्र आदि के द्वारा सांस्कृतिक समस्याओं से परिचित कराया जा सकता है और शिक्षितों को पत्र, पत्रिका, ट्रैक्ट, पर्चे, पुस्तक आदि द्वारा बताया जासकता है। तात्पर्य यह कि प्रत्येक हिन्दू को अपने धर्म सिद्धान्तों की प्रारंभिक जानकारी से अवश्य परिचित होना चाहिए।

(१५) व्यायामशालाएं पाठशालाएं, उद्योग शालाएं, तेजी से बढ़नी चाहिए। अस्त्र शस्त्र, व्यापार, शिल्प, रसायन, कृषि, चिकित्सा, विज्ञान आदि की उन्नति में विद्वानों का मस्तिष्क, धनियों का धन, जानकारों का कौशल पूरी तरह लगना चाहिए जिससे जातीय शक्ति और समृद्धि में भारीवृद्धि हो।

(१६) जातीय भाषा, भेष, भूषा भाव, सभ्यता और शिष्टाचार का व्यवहार और आदर बढ़ना चाहिए अपनत्व को सदा प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

(१७) त्यौहार और संस्कारों के अवसर पर सामूहिक उत्सव मनाये जांय और उनमें छिपे हुए रहस्यों और संदेशों पर विद्वानों द्वारा विवेचन किया जाय।

(१८) किन्हीं हर्ष, शोक के अवसरों एवं छोटे बड़े उत्सवों पर एक दूसरे के यहां सम्मिलित होने का प्रचलन बढ़ाना चाहिए। वर्तमान समय की आर्थिक दशा को देखते हुए प्रीति भोजों में पूर्ण आहार की प्रथा के स्थान पर अल्प आहार एवं जलपान, की प्रथा चलानी चाहिए, जिससे स्वल्प व्यय में अधिक मित्रों को आमंत्रित किया जासके।

(१९) संस्कृत भाषा और वेद शास्त्रों के पठन पाठन को बढ़ाया जाय।

(२०) एकता, सदाचार, प्रेम, उदारता, भ्रातृभाव, सेवा, सहृदयता, पवित्रता, कर्तव्य परायणता, लोक सेवा, धार्मिकता, देशभक्ति, समय, सत्यनिष्ठा, न्यायशीलता, निर्भीकता, साहस, दुष्टता का विरोध आस्तिकता आदि सद्गुणों को प्रत्येक व्यक्ति में कूट कूट कर भरना चाहिए ताकि सच्चे हिन्दुत्व का असली रूप प्रकट हो।

विघटन नहीं, संगठन करो।

मुसलिम लीग ने जिस जातीय विद्वेष एवं घृणा, का वे लगाम प्रचार किया उसने हमारे शान्ति प्रिय देश में अशान्ति की आग लगादी। सीधी कार्यवाही के पीछे उनकी जो योजना थी उसका परिचय जगह जगह होरही बर्बरता और तलाशियों में प्राप्त होरही घातक सामिग्री से सहज ही पता चल जाता है। अब भी पाकिस्तान के लीगी लीडर बराबर जिस प्रकार का विष वमन कर रहे हैं, उसकी प्रतिक्रिया भारत की प्रजा में होरही है।

जनता लीगियों की अनीति मूलक नीति का अन्त देखना चाहती है। उसके मनमें इसके लिए उद्वेग आवेश और अधैर्य का बाहुल्य है। इस आवेश का उचित दिशा में निष्कासन न होने से वह गलत मार्ग में फूट पड़ता है और उससे अवांछनीय परिणाम उत्पन्न होते हैं। सरकार यदि पाकिस्तानी लीडरों को राहे रास्त पर लाने के लिए कोई जोरदार कदम उठाती तो जनता का आवेश उसके सहयोग के रूप में लग सकता था, पर परिस्थितियों की विषमता के कारण

हमारी सरकार वैसा नहीं कर पारही है। ऐसी दिशा में लोक शान्ति के लिए यही मार्ग रह जाता है कि इस जन-उद्वेग को ऐसे रचनात्मक कार्यों में लगाया जाय, जिससे आज नहीं तो कल इन अनीतियों के बन्द होने में सहायता मिले।

यदि इस प्रकार का कोई कार्यक्रम भी जनता के सामने न आया तो अधैर्य का अनुचित मार्ग में होकर फूटने को रोकना कठिन होजायगा। इसलिए आज की परिस्थिति में केवल 'शान्त रहो-शान्त रहो' कहने की बजाय जातीय संगठन सुधार एवं सामाजिक पुनर्निर्माण के कार्य में लगजाना चाहिए।

जिनके हृदयों में लीगी गुण्डागीरी के प्रति क्षोभ भर गया है, उन्हें सोचना है कि अवांछनीय प्रतिशोध लेने से उद्देश्य की पूर्ति न होगी। प्रतिशोध का चक्र ऐसा है जिसे यदि तोड़ा न जाय तो उसका अन्त दोनों पक्षों के सर्वनाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं होसकता। घृणा से घृणा की और द्वेष से द्वेष की उत्पत्ति होती है। थोड़े से लीगियों ने घृणा फैलाई उसकी प्रतिक्रिया से सारे देश होरही है, यदि इधर से भी वही हुआ तो वातावरण इतना दूषित होजायगा कि सार्वजनिक शान्ति ही खतरे में पड़ जायगी। दूसरे जिस चर्चिल मंडली ने लीगियों को शिखंडी बनाकर उभरती हुई भारत की प्रचंड राष्ट्रीय शक्ति को तहस नहस कर डालने का आयोजन किया है उनके वे मनोरथ पूरे होजायेंगे। शिखंडी-अपनी शैतानी के बदले में कुछ प्रलोभन पा सकते हैं पर हमें तो दुहरा घाटा रहेगा।

यह वक्त विशेष बुद्धिमानी का परिचय देने का है। एक समय शंकरजी को कालकूट विष अपने कंठ में धारण करना पड़ा था। द्रोपदी का अपमान देखते हुए भी पांडवों को चुप रहना पड़ा था। कभी कभी ऐसे समय किसी जाति के सामने भी आते हैं। आज का वक्त ऐसा ही है। आज इसी में कल्याण है कि जनता अपने रोष को विवेक पूर्वक काबू में रखे और उसे ऐसे मार्ग में प्रयोजित करे जिससे हमारा जातीय भविष्य उज्वल होजाय। यह वक्त छोटी छोटी बातों पर सरकार से उलझने का भी नहीं है। इसमें शक्ति का अपव्यय होता है। इस समय तो हमें प्रजा को जागृत, संगठित और सुसंस्कृत बनाने की आवश्यकता है। जागृत प्रजा को प्रजातंत्र युग में सरकार से लड़ने की या मांगे रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती-क्योंकि उसकी चुनी हुए सरकार उसकी इच्छा की प्रतीक होती है और उसकी इच्छानुसार कार्य करती है। जागृत जनता के उचित लोकमत के विरुद्ध जाने का कोई लोकतंत्री विधि से बनी हुई सरकार साहस नहीं कर सकती।

शक्ति सरकार के हाथ में नहीं, जनता के हाथ में होती है। इसलिए हमें सरकारों पर निर्भर रहने की अपेक्षा-जनता की ओर देखना चाहिए। किसी देश की मजबूती वहां की सरकार की मजबूती पर नहीं वरन् वहां की जनता की मजबूती पर निर्भर रहती है। हमें प्रजा की शक्ति को जागृत करना है, उसी शक्ति की प्रेरणा से सरकारें कार्य किया करती हैं।

आवेश और रोष में मनुष्य बड़े बड़े साहसिक कार्य कर डालता है, बड़े बड़े नुकसान सह लेता है और बड़े बड़े खतरे उठा लेता है। हममें से हर एक को अपने आप से पूछना चाहिए कि अनीति उन्मूलन का अभिलाषित परिणाम यदि प्राप्त होता हो तो उसके लिए हम कितना कष्ट उठा सकते हैं कितना त्याग कर सकते हैं। जितना अधिक से अधिक कर सकते हों—उसे निश्चित करें। इस निश्चित मात्रा की शक्ति को हम स्वजनों की सेवा के लिए अर्पित करें और आवेश जनक परिस्थितियां शान्त होजाने पर भी उस शक्ति को निर्माण कार्यों में लगावें। तब एक ऐसी मजबूत चीज हमारे पास होगी जिसकी कल्पना मात्र से अत्याचारियों की घिग्घी बंध जायगी।

तात्कालिक अधीरता से काम न चलेगा। रोग पुराना है। धैर्य पूर्वक जोरदार चिकित्सा करने से दूर होगा। पिछले एक हजार वर्ष में हमने अनेकों बार एक से एक भयंकर उत्पीड़न सहे हैं। इस पीड़ा का बीमारी से संबंध है, जब तक बीमारी रहेगी तब तक पीड़ा भी पीछा न छोड़ेगी। अब हमें एक बार पूर्ण निश्चय के साथ यह प्रण कर लेना चाहिए कि आये दिन तरह तरह के त्रास देने वाली इस बीमारी का अन्त ही करके छोड़ेंगे। (१) संगठन (२) विकृतियों का निवारण (३) सब प्रकार की शक्तियों का अभिवर्धन, इन तीन कार्यक्रमों को लेकर पूरी शक्ति के साथ लगा जाय तो कोई कारण नहीं कि स्वल्प काल में ही हम इतने शक्तिशाली न बन जांय कि आज जो खतरे हैं तथा निकट भविष्य में जिन आक्रमणों की आशंका है उनका कोई आधार ही शेष न रहे। आज हमारी शक्तियों को संघटनात्मक कार्यों में लगने की आवश्यकता है। इस दिशा में बढ़ाया हुआ हर एक कदम सच्चा ठोस प्रभाव शाली और चिरस्थायी फल उपस्थित करेगा, उस फल से ही प्रतिशोध की अग्नि शान्त होगी। निर्बलों द्वारा लिये हुए प्रतिशोध तो उन्हीं के लिए घातक सिद्ध होते हैं।

प्रश्न माला के संबंध में।

कुछ महत्व पूर्ण प्रश्नों पर पाठकों के विचार जानने की इच्छा से हमने उनसे पूछा था कि क्या उनके पास उत्तर देने का अवकाश है? जिनने स्वीकृति भेजी थीं उनके पास प्रश्नावली भेजी जाचुकी है।

जिनके पास प्रश्न पहुंच चुके हैं उनसे उत्तर भेजने की प्रार्थना है और जिन्होंने अभी तक प्रश्नावली नहीं मंगाई है वे शीघ्र मंगा लेने की कृपा करें।

—संपादक 'अखंडज्योति'

अखण्डज्योति की दशाब्दी

संवत् १९९४ वि० की दीपावली के दिन 'अखण्डज्योति' की स्थापना हुई थी। उसी दिन से इन संगठन के द्वारा सद्ज्ञान प्रसार का कार्य एक व्यवस्थित योजना के अनुसार आरंभ किया गया था। अखण्डज्योति पत्रिका उसके कुछ समय बाद निकाली गई थी, पर कार्यारंभ पहले होगया था। उस स्थापना को इस दीपावली पर पूरे दस वर्ष हो जावेंगे।

इस अवसर पर अखंडज्योति अपने परिवार के समस्त सदस्यों का एक विशाल सम्मेलन बुलाने की आयोजना कर रही थी, ताकि अब तक के कार्यों का आलोचन, आगामी योजनाओं का निर्माण, वर्तमानकाल की सामयिक समस्याओं पर विचार विनिमय, सैद्धान्तिक मतभेदों का सुलझाव, एवं व्यक्तिगत प्रेमपरामर्श का सुअवसर मिलता। पर आज तो स्थिति ही दूसरी है। पंजाब की सीमा से मथुरा जिले की सीमाएँ लगी हुई हैं। पंजाब की प्रतिक्रिया यहां हुई। अनेक भयंकर काण्ड यहां हुए, फल स्वरूप यह जिला अशान्ति क्षेत्र घोषित हुआ। करफ्यू आर्डर एवं दफा १४४ के प्रतिबंध लगे हुए हैं, रेल की यात्रा करने एवं कितने ही स्टेशनों पर गाड़ियां खड़े न होने पर प्रतिबन्ध हैं। करीब बीस हजार शरणार्थी इधर आजाने के कारण वस्तुओं की एवं स्थान की कमी तथा मंहगाई बढ़ गई है। और भी अनेकों ऐसी कठिनाइयाँ हैं जिनके कारण आज वह सम्मेलन नहीं बुलाया जासकता। उस कमी की आंशिक पूर्ति पाठकों से व्यक्तिगत पत्र व्यवहार द्वारा एवं अखंडज्योति के लेखों द्वारा पूरी की जारही है। ईश्वर ने अवसर दिया तो निकट भविष्य में फिर कभी ऐसा एक सम्मेलन बुलावेंगे।

अखण्डज्योति परिवार के सदस्यों ने हमारे प्रश्नों का उत्तर देते हुए अनेक समस्याओं के

संबंधमें बड़े मूल्यवान विचार भेजेहैं। यह बौद्धिक दृष्टि से एक अमूल्य सम्पत्ति है। इन विचारों का महत्वपूर्ण अंश निचोड़ कर हम पाठकों के सामने अपनी भाषा में उपस्थित करते रहेंगे। इस प्रकार हमारे परिवार के सदस्यों के विचार आपस में एक दूसरे के पास पहुंचेंगे और सम्मेलन का आंशिक लाभ मिल जायगा।

हमारी संस्कृति, जाति और मातृभूमि को आज एक संक्रान्ति काल में होकर गुजरना पड़ रहा है जिसमें बड़ी सतर्कता जागरूकता और विवेक शीलता की आवश्यकता है। थोड़ी सी भूल का भयंकर परिणाम होसकता है। रेल की पटरी की "दिशापरिवर्तन-कैंची" को बदलने में यदि थोड़ी सी भूल होजाय तो रेलगाड़ी थोड़ी ही देर में अपने निर्दिष्ट स्थान की अपेक्षा सैकड़ों मील इधर उधर चली जायगी। प्रसूति काल में थोड़ी भी असावधानी हो तो जननी और शिशु का जीवन खतरे में पड़ सकता है। आज वैसी ही स्थिति है। आग लगने पर खाना पीना छोड़ कर लोग पानी लेकर उसे बुझाने दौड़ते हैं आज भी वैसा ही अवसर है कि साधारण जीवन क्रम की, साधारण बातों की अपेक्षा सामूहिक समस्याओं पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है, उसे सुलझाने की अधिक आवश्यकता है। अन्यथा सामूहिक विकृति उत्पन्न होने पर हमारा व्यक्तिगत व्यवस्था क्रम भी नष्ट भ्रष्ट हुए बिना न रहेगा।

इस अवसर पर हमने अखंडज्योति के पाठकों का ध्यान उपरोक्त तथ्य की ओर भी आकर्षित किया है। पाठकों के विचार हमने पूछे हैं और उनसे सामयिक कर्तव्यों का निश्चय करने में सहायता ली है और इस विचार विनिमय के पश्चात् जिस निष्कर्ष पर हम पहुंचे हैं उसे पाठकों के सामने रखा है। हम लोगों को विशेष तत्परता के साथ हिन्दुत्व को दृढ़ बनाने के लिए इस समय जुटना है, ताकि क्षितिज पर दिखाई पड़ने वाली काली घटाओं के खतरे से बचा जासके और जिन बुरी परिस्थितियों में होकर गुजरना पड़ा है उनमें आगे न गुजरना पड़े।

यह सर्व विदित है कि अखंडज्योति कागज छापकर बेचने वाली कम्पनी नहीं है। यह एक धार्मिक संस्थान है, जहां मनुष्यों की मनोभूमि को सात्विकता के ढांचे में ढाला जाता है। कारखानों में सड़े गले लोहे को भी तपा, गला कर, ठोक-पीट कर, रेत-रगड़कर, एक उपयोगी औजार बनाया जाता है, अखंडज्योति के आध्यात्मिक कारखाने में सड़े गले, टूटे फूटे, काई और जंग लगे हुए हृदय एवं मस्तिष्कों का इस प्रकार सुधारा, बनाया एवं बदला जाता है कि वे कुछ से कुछ होजांय, दुख दारिद्र की कालिमा छोड़ कर सुख सौभाग्य के प्रकाश से चमकें। इस प्रयोग शाला द्वारा अपने परिवार का हर सदस्य यथोचित लाभ उठावे इसके लिए उनसे व्यक्तिगत संबंध भी स्थापित किये गये हैं।

अपनी दशाब्दी के अवसर सम्मेलन बुलाने की अभिलाषा अखंडज्योति पूर्ण न कर सकी, पर इन तीन मार्गों से अपने तीन उद्देश्यों को किसी हद तक पूरा करने का प्रयत्न किया है। इस शुभ अवसर पर वह, मानव जाति की सच्ची सेवा, धर्म विभावना की दिशा में और भी अधिक तपश्चर्या एवं तेजी के साथ कार्य करने की प्रतिज्ञा करती है। साथ ही वह पाठकों से भी यह आशा करती है कि अपनी आत्मिक तथा भौतिक शक्तियों से इस पुनीत मार्ग में हमारा सहयोग करें। सहयोग ही शक्ति है और शक्ति से ही सेवा होती है। अधिक फल प्राप्त करने के लिए अधिक कार्य करना होता है। आइए, हम और आप मिलकर अधिक काम करने के लिए आगे बढ़ें।

———

यदि आप दूसरों को सुधारना चाहते हैं तो पहले स्वयं सुधरने का प्रयत्न करिये।

\+ \+ \+

अपने परिवार को सुदृढ़ बनाओ

छोटे छोटे कण मिलकर एक विशाल काय वस्तु बनती है। यह कण प्रथक प्रथक रह कर उतने शक्ति सम्पन्न एवं कार्यशील न हो पाते, जितना कि उनके एकस्थान पर एकत्रित होने से संभव है। पानी की एक बूंद का प्रथक सत्ता के रूप में कुछ महत्व नहीं, वह पर जब वह बूंद किसी बड़े संगठन का अंग बन जाती है तो उसकी शक्ति उतनी ही बढ़ जाती है जितना कि बड़ा वह संगठन है।

हम सब लोग लोक सेवा, परमार्थ एवं धर्म विस्तार के लिए अपने साधन, अवसर, तथा रुचि के अनुसार कार्य करते ही हैं। इनका सुफल भी हमें प्राप्त होता ही है,पर यह सामूहिक रूप से इस दिशा में कदम उठाया जाय तो बहुत बड़ा कार्य होसकता है ! यह माना हुआ सिद्धान्त है कि निर्जीव वस्तुएं एक और एक मिलकर दो होती हैं पर सजीव आत्माएं एक और एक मिलकर (११) ग्यारह होजाती हैं। एक विचार एक आदर्श, एक हृदय के थोड़े से व्यक्ति भी यदि कभी मिल जाते हैं तो उनकी सम्मिलित शक्ति बहुत ही प्रभावशाली हो जाती है।

अखण्डज्योति परिवार के प्रायः सभी सदस्य एक आदर्श और एक विचार के हैं । हम सभी व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन में सत्य, प्रेम, तथा न्याय की स्थापना तथा वृद्धि चाहते हैं ! विविधि कार्यों द्वारा इस एक ही लक्ष की ओर अग्रसर होने का हम सब प्रयास करते हैं। विचार और आदर्शों के उच्च एवं सतोगुणी होने के कारण हम सबके हृदय भी एक हैं। इस सात्विक एकता के कारण हमारा परिवार एक सतोगुणी शक्तियों का पुञ्ज-प्रेरणाकेन्द्र बनता जारहा है।

इस परिवार की जितनी ही वृद्धि होती है, उतना ही हमारी शक्ति बढ़ती है और लक्ष की ओर प्रगति होती है। पानी की बूंदों का छोटा समूह गड्ढा, उससे बड़ा तालाब, उससे बड़ा सरोवर, उससे बड़ा समुद्र कहलाता है, इनकी उत्तरोत्तर शक्ति अधिक होती जाती है। आज अखण्डज्योति परिवार जितना बड़ा है-यह भविष्य में उससे बड़ा होजाय तो निश्चित रूप से शक्ति उसी अनुपात से बढ़ेगी और वर्तमानकाल में तामसी तत्वों की जो लोकव्यापी बाढ़ आई हुई है उस पर नियंत्रण करना सुगम होगा। असुरता के आक्रमण से आज जो हृदय विदारक दृश्य उपस्थित हुए हैं तथा भविष्य में होने की संभावना है, उनको रोकने का एक ही तरीका है कि हैवानियत और शैतानियत पर काबू पाने वाली इंसानियत का मजबूत बनावें, आगे बढ़ावें। यह कार्य सतोगुणी शक्तियों को बढ़ाने से ही सकता है। इसके अनेक तरीके हैं उनमें से एक अखंडज्योति परिवार का सुदृढ़ एवं सुविस्तृत बनाना भी है।

अखंडज्योति परिवार के सदस्य यदि सच्चे हृदय से इच्छा करें तो कोई कारण नहीं कि दस दस बीस बीस नये पाठक न बनासकें ! ऐसे अनेकों उदाहरण हैं कि साधारण श्रेणी के लोगों ने थोड़े प्रयत्न से पचास पचास सौ सौ नये पाठक बना दिये। सत् मार्ग की प्रेरणा प्रदान करने वाले, सम कोटि के पत्रों में सबसे सस्ती अखंडज्योति को एक वर्ष तक प्राप्त करने के लिए ढाई रुपया खर्च कर देने को अपने दस पांच मित्र रजामंद कर लेना जरा भी कठिन नहीं है। कठिन केवल एक ही वस्तु है, वह है अपने अन्दर धर्म कार्य के लिए थोड़ा उत्साह होना। जिसके मनमें थोड़ा भी उत्साह इस दिशा में होगा वह दस पांच नये सदस्य बड़ी ही आसानी से बढ़ा सकता है ऐसी हमारी सुनिश्चित मान्यता है।

हमारे परिवार के सदस्य अनेक शुभ कर्मों के लिए प्रयत्न करते हैं, समय देते हैं, दूसरों को उत्साहित करते हैं। हम उन्हें विश्वास दिलाते

हैं कि अखंडज्योति परिवार की वृद्धि करना किसी उत्तम शुभ कर्म से कम नहीं है। संसार में सतगुण को बढ़ाना, लोगों को सतोगुणी बनाना, अनेकों शुभ कर्मों के वृक्ष लगाना है। इस का ब्रह्मदान का-पुण्य फल अक्षय है। स्वजनों को सन्मार्ग के लिए प्रेरणा देना—उनके साथ सबसे बड़ा उपकार करना है। भौतिक सहायता से हम किसी को उतना सुख नहीं पहुंचा सकते जितना कि उसकी आत्मोन्नति के सहायक बनकर उसके लिए अनन्त सुखों का द्वार खोलते हैं। अपने मित्रों की सच्ची सेवा की दृष्टि से उन्हें अखंडज्योति का पाठक बनाना किसी भी बड़े से बड़े महत्व पूर्ण सहयोग या उपकार से कम नहीं है।

परमार्थ भावना को चरितार्थ करने का भी प्रयत्न होना चाहिए। स्वयं जिसे लाभदायक समझते हैं उसे दूसरों के सामने भी प्रस्तुत क्यों न करें। अखंडज्योति की सदस्यता यदि आत्मोन्नति में सहायक होती है तो दूसरों को भी उसके लिए प्रेरणा देकर उनके साथ में सच्चा उपकार क्यों न किया जाय?

पाठको! अखण्डज्योति परिवार के सदस्यो! अपने परिवार को पुष्ट करो, इसे बढ़ाओ, और बलवान बनाओ। सात्विकता का प्रकाश अपने आस पास अधिक क्षेत्र में फैलाने के लिए हाथ में मशाल लेकर आगे बढ़ो। अखंडज्योति अपने जीवन के दशवर्ष व्यतीत करके ग्यारहवें में प्रवेश कर रही है। इस शुभ अवसर पर उसकी शक्ति को दश गुनी बनाने का प्रयत्न करो, दश मित्रों को इस परिवार में प्रविष्ट कराने का प्रयत्न करो। विश्वास रखो, सत् से पारपूर्ण प्रयत्न भगवान सत्य नारायण की कृपा से अवश्य पूरे होते हैं। अपने अन्तःकरण के भीतर भरे हुए महान सत् को प्रोत्साहित करो—इस दिशा में प्रयत्न आरंभ करो—आपकी, आपके परिवार की, शक्ति बात की बात में दसगुनी होजायगी। यह संवर्धन हम सबके लिए-लोक हित के लिए-कितना कल्याणकारी होगा—इसका "प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या" की नीति के अनुसार थोड़े ही दिनों में आंखों के आगे प्रत्यक्ष रूप से देखा जासकेगा।

युग धर्म को पहचानो।

सत्य, अहिंसा, सेवा धैर्य संयम आदि के प्रमुख धर्म आधार सनातन हैं, उनकी उपयोगिता और महत्ता में कभी अन्तर नहीं आता। फिर भी समय और परिस्थिति के अनुसार कार्य प्रणाली में हेर फेर करना अवश्यक होता है। इस हेर फेर की आवश्यकता को शास्त्र कारों ने स्वीकार किया है और उसे "युग धर्म" कहा है।

प्राचीन काल में भारत उन्नति के सर्वोच्च शिखिर पर था, समृद्धि की कमी न थी, शान्ति का अटल राज्य था, लोक में सात्विक विचार और कार्यों का बाहुल्य था, जीवन क्रम में कोई संघर्ष न था। किसी से कभी कोई भूल होती थी तो उसे साधारण से नैतिक दबाव से सुधार दिया जाता था। उस समय की स्थिति के अनुकूल ही तब रीति, रिवाज, प्रथा, परम्परा, विचार कार्य आदि की व्यवस्था होती थी।

पर आज तो स्थिति में असाधारण अन्तर होगया है। जो कठिनाइयां आज हमारे सामने हैं वे असाधारण हैं, इसलिए उनके सुलझाव के लिए भी नये दृष्टिकोण से, सामयिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर विचार करना होगा तदनुकूल कार्य प्रणाली का निर्धारण करना पड़ेगा। शान्ति काल में आत्मोन्नति का आयोजन करना होता है पर विपत्ति काल में आत्मरक्षा के साधन ढूंढने में सारी शक्ति लगानी होती है। आज ऐसा ही असाधारण समय है, आज हमारी सभी समस्याएं उलझी पड़ी हैं, इस अवसर पर धर्म के मूल भूत सिद्धान्तों का ध्यान रखते हुए कार्य प्रणाली को युग धर्म के अनुकूल बनाना ही श्रेयस्कर है।

❀ जीवन-गान ❀

(श्री द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी एम० ए०)

मृत प्राणों में मधुरामृत की एक बूंद ढुलका रे!
गायक, जीवन-गान सुना रे!

बहुत सुन चुका गान, थपकियाँ लगा सुलाने वाले
स्वप्नों के रंगीन जगत् की ओर बुलाने वाले
लगा समझने स्वप्न सत्य मैं, सत्य हुआ सपना रे! गायक, जीवन-गान सुना रे!

खिंचता गया उसी दुनिया की ओर सतत् बरबस मैं
कर न सका क्षण-भर को भी—अपने को अपने वश में!
था सुषुप्ति का राज्य, जागरण का कब चिन्ह वहां रे! गायक, जीवन-गान सुना रे!

युग-युग की काली रजनी का छाया गहन अंधेरा
जान सके कब प्राण किसे—कहते हैं सरस सवेरा!
मरघटों की नीरवता का भेद न मैं समझा रे! गायक, जीवन-गान सुना रे!

जग कहता अमरत्व प्राप्त कर भूल रहे ये भूले
मैं कहता निश्चेष्ट शांति है मरण, विश्व! मत भूले!
मर कर मिली अमरता तो जीवन क्यों व्यर्थ मिला रे! गायक, जीवन-गान सुना रे!

जीवन है अमूल्य, उसका जग मोल नहीं कर पाया
विश्व-तराजू में रख उसकी तोल नहीं कर पाया!
कह देता धीमे-से 'जीवन नश्वर है, सपना रे!' गायक, जीवन-गान सुना रे!

किन्तु भाव दुर्बलता सूचक हैं ओ जग! ये तेरे,
सहन कर सका तू जीवन के ये संघर्ष—थपेड़े?
उसी पराजय की परिभाषा 'जीवन है सपना रे!' गायक, जीवन-गान सुना रे!

जीवन के समराङ्गण में—होता वीरों का मेला
रक्त भरी झोली से जाता फाग वहां पर खेला!
ठहरा वहां वही जिसमें साहस-बल शक्ति-प्रभा रे! गायक, जीवन-गान सुना रे!

मौन समाधि लगाकर अब तक किसको स्वर्ग मिला है
भीख मांगने से सिंहासन देवों का न हिला है!
स्थिरता—अकर्मण्यता केवल मरण, नहीं जीना रे! गायक, जीवन-गान सुना रे!

चहल-पहल, हलचल, परिवर्तन क्षण-क्षण में, पल-पल में
होते रहें विश्व-सरिता की धारा के कल-कल में!
मैं इनको ही जीवन का लक्षण कहता आया रे! गायक, जीवन-गान सुना रे!

तू इनका ही स्रोत बहा—अपने स्वर की धारा में
जगा, बहा ले जा जग को जो पड़ा सुप्त कारा में!
घर-घर जाग उठे, जागृति की मधुर भैरवी गा रे! गायक, जीवन-गान सुना रे!